रवि-रश्मि

ओमप्रकाश खण्डेलवाल

"रवि-रश्मि' कविवर ओमप्रकाश खण्डेलवाल द्वारा रचित एक राष्ट्रीय प्रबंध काव्य है। इसमें कवि ने कल्पित कथानक की आधार शिला पर राष्ट्रीयता का ऐसा भव्य भवन निर्मित किया है जो आधुनिक भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के विविध आयामों का सम्यक् प्रतिबिम्बन करता है।"

"ऐसे आदर्श व्यक्तित्व से युक्त नायक नायिका की परिकल्पना करने वाले कवि का उद्देश्य कितना महान, विचारधारा कितनी महनीय और उदात्त तथा दृष्टिकोण कितना व्यापक और उदार होगा, यह बताने की आवश्यकता नहीं रह जाती। आज के हिन्दी कवियों में इस प्रकार के कवि विरल ही हैं।"

"इसे भावात्मक स्तर पर प्रेम का काव्य कहा जा सकता है जिसमें नायक-नायिका का सौन्दर्यानुभूतिजन्य वैयक्तिक प्रेम क्रमशः उदात्त देश-प्रेम और मानव प्रेम के रूप में परिणत हो जाता है। इस दृष्टि से रवि-रश्मि की तुलना पं० रामनरेश त्रिपाठी के प्रख्यात प्रबंध काव्यों 'पथिक' और 'मिलन' से की जा सकती है।"

"अतः यह बात निस्संकोच कही जा सकती है कि 'रवि-रश्मि' विराट प्रेम का काव्य है जिसमें वैयक्तिक प्रेम, प्रकृति-प्रेम, समाज-प्रेम, देश-प्रेम और मानव प्रेम सभी एक साथ समाविष्ट हो गये है।"

डा० शम्भु नाथ सिंह

"रवि-रश्मि' वर्तमान परिवेश के परिदृश्य चित्रित करता है। युद्ध, बाढ़, ग्रामोदय, हरिजनोद्धार तथा दस्यु-उन्मूलन आदि अनेक सवाल हैं जिनका जबाब देने का प्रयास इस काव्य में है। इस काव्य में अनेक रोमांचक स्थल हैं। सौदर्य एवं प्रमोद्वेलन से सम्बद्ध सर्गों में तो रोमांचकता ही रोमांचकता दृष्टिगत होती है।"

डा० मोहन अवस्थी
रीडर हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

सेवा की साकार मूर्ति

डा० प्रज्ञा देवी

को सादर

समर्पित

ओमप्रकाश

१७।१२।८३

रवि-रश्मि

ओम प्रकाश खण्डेलवाल

अर्चना प्रकाशन, प्रतापगढ़

अर्चना प्रकाशन
३०६, शंकर दयाल मार्ग,
चौक, प्रतापगढ़ द्वारा प्रकाशित



प्रथम संस्करण
दीपावली १५ नवम्बर '८२



सुपरफ़ाइन प्रिंटर्स
४/२ बाई का बाग, इलाहाबाद
द्वारा मुद्रित

सजिल्द संस्करण : मूल्य २०.००

समर्पण

कविता - कानन का

यह प्रथम काव्य - कुसुम

माँ भारती के चरणों में

सभक्ति,

श्रद्धापूर्वक, सादर,

समर्पित

ओमप्रकाश खण्डेलवाल

प्राक्कथन

'रवि-रश्मि' कविवर ओमप्रकाश खण्डेलवाल द्वारा रचित एक राष्ट्रीय प्रबंध काव्य है। इसमें कवि ने कल्पित कथानक की आधार शिला पर राष्ट्रीयता का ऐसा भव्य भवन निर्मित किया है जो आधुनिक भारतीय राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों के विविध आयामों का सम्यक् प्रतिबिम्बन करता है। राष्ट्रीयता एक परिवर्तनशील अवधारणा है जो प्रत्येक युग में युगीन परिस्थितियों के अनुरूप बदलती रहती है। मध्यकाल में राष्ट्रीयता का रूप धर्म और संस्कृति की रक्षा और मानवीय मूल्यों की स्थापना की प्रवृत्ति में निहित था। इसीलिये कबीर, जायसी, नानक, सूर और तुलसी मध्यकाल के सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के उन्नायक कवि हैं; साथ ही भूषण उस काल के राजनीतिक स्वातंत्र्य की चेतना के प्रतीक हैं। इसी तरह ब्रिटिश सरकार की गुलामी से मुक्ति के लिये होने वाले संघर्ष में वैचारिक और भावात्मक योग देने वाले आधुनिक युगीन कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालमुकुन्द गुप्त, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, माखन लाल चतुर्वेदी, गया प्रसाद शुक्ल सनेही, माधव शुक्ल, सोहन लाल द्विवेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन और दिनकर राजनीतिक राष्ट्रीयता की चेतना के प्रवर्त्तक और उत्प्रेरक कवि रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति से दो दशक पूर्व से ही समतामूलक समाज और समाजवादी राज्य पद्धति की स्थापना के लिये प्रगतिवादी काव्य का जो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ वह भी राष्ट्रीय चेतना का ही एक आयाम था। सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, नरेन्द्र शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, शिवमंगल सिंह सुमन आदि प्रगतिवादी कवियों ने अपनी कविताओं में इसी समाजवादी राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति की है।

ठीक इसी तरह समाज-सेवा और सामाजिक विसंगतियों के विरोध की जो प्रवृत्ति भारतेन्दु युग में प्रारम्भ हुई थी, वही द्विवेदी युग और छायावाद युग में विविध सामाजिक आन्दोलनों के रूप में विकसित हुई। आर्य-समाज के समाज सुधार सम्बन्धी आन्दोलनों और महात्मा गांधी की समाज-सेवा सम्बन्धी योजनाओं जैसे हिन्दू मुस्लिम एकता, ग्रामोत्थान, अछूतोद्धार, दरिद्र नारायण की सेवा, राष्ट्र

भाषा-प्रचार, राष्ट्रीय शिक्षा, कुष्ट रोगियों की सेवा, खादी प्रचार आदि से सम्बन्धित कार्यों को सामाजिक और सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित माना जा सकता है। पिछले सौ वर्षों में भारत में समाज-सुधार और समाज-सेवा के उद्देश्य से स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गांधी, स्वामी श्रद्धानन्द, महर्षि कर्वे, आचार्य बिनोवा भावे, काका कालेलकर, वियोगी हरि, मीरा बहन, जयप्रकाश नारायण आदि की प्रेरणा से हरिजन सेवक संघ, सर्व सेवासंघ, कुष्टाश्रम, नारी-निकेतन, बाल सुधार गृह आदि नामों से अनारीनत समाज सेवी संस्थाओं का जन्म हुआ जो आज भी समाज की अमूल्य सेवा कर रही हैं। इन सभी कार्यों को सामाजिक राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित कार्य कहना समीचीन होगा। वस्तुतः स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रोत्थान के उद्देश्य से किये जाने वाले सभी कार्यों को राष्ट्रीय कार्य कहा जा सकता है जिनमें से समाज सेवा का कार्य सबसे महत्त्व-पूर्ण है।

आधुनिक भारतीय समाज की सेवा और उत्थान के अनेक क्षेत्र हैं जिनमें कार्य करने के लिये ऐसे हजारों-लाखों व्यक्तियों की आवश्यकता है जो अपने निजी स्वार्थों का त्याग करके समस्त मानव समाज की सेवा में अपने को पूर्णतः समर्पित कर सकें। वे क्षेत्र हैं अछूतोद्धार, डाकू-उन्मूलन, अन्त्योदय, बाढ़, सूखा आदि से रक्षा, परिवार-नियोजन, जन-स्वास्थ्य की रक्षा, अस्पताल, विकलांगों का आर्थिक नियोजन, तिलक-दहेज-विरोधी आन्दोलन, वृक्षारोपण और वन-संरक्षण, सहकारी आन्दोलन आदि। इनमें से किसी भी क्षेत्र में किया जाने वाला कार्य आज के भारतीय जीवन के परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय कार्य है। इसी तरह इस प्रकार की समाज सेवा की प्रवृत्ति को अपनाकर लिखे गये काव्य को भी निस्संकोच राष्ट्रीय काव्य की संज्ञा दी जा सकती है।

'रवि-रश्मि' में समाज सेवा सम्बन्धी ऐसे ही रचनात्मक कार्यों को कथा का प्रधान अंग बनाया गया है और इस प्रकार एक समाजसेवी नवविवाहित दम्पति का आदर्श चरित प्रस्तुत करके सामाजिक राष्ट्रीयता की भावना को एक प्रकाश-मान दीप स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। रवि और रश्मि दोनों ही आधुनिक युगीन युवा-प्रवृत्तियों से अलग हटकर नये वैचारिक धरातल पर खड़े हैं। असामाजिक, अमर्यादित, अराजकतामूलक और उच्छृंखल प्रवृत्ति वाले आज के युवा वर्ग का कोई लक्षण उनमें वर्तमान नहीं है। सौंदर्य-प्रेम और स्वस्थ काम-वृत्ति उनमें भी है पर वे सामाजिक मर्यादाओं की सीमा का उल्लंघन करना अनुचित मानते हैं। उनकी दृष्टि में जीवन का लक्ष्य अपने निजी सुख और स्वार्थ की चिन्ता करना नहीं बल्कि मानव मात्र का कल्याण करना है और इस महान लक्ष्य

की प्राप्ति के लिये यदि आत्मोत्सर्ग भी करना पड़े तो वे प्रसन्नता पूर्वक ऐसा करने को तैयार हैं। वे ऐसा करते भी हैं। आज का युवा वर्ग या तो अच्छी नौकरी प्राप्त कर अपना एक निज़ी छोटा और सुखी परिवार बसाना चाहता है या राजनीति के क्षेत्र में घुसकर समाज का शोषण करने में प्रवृत्त होने की इच्छा रखता है। रवि और रश्मि दोनों ही विवाह करने के बाद भी अपना निजी परिवार नहीं बसाते बल्कि पूरे समाज को ही अपना परिवार बना लेते हैं। इस तरह वे महात्मा गांधी के आदर्शों से अनुप्रेरित सच्चे समाज सेवा व्रती और देश प्रेमी हैं। अतः उनका चरित्र आज के युवा-युवतियों के लिये आदर्श और अनुकरणीय है। ऐसे आदर्श व्यक्तित्व से युक्त नायक नायिका की परिकल्पना करने वाले कवि का उद्देश्य कितना महान, विचार धारा कितनी महनीय और उदात्त तथा दृष्टिकोण कितना व्यापक और उदार होगा, यह बताने की आवश्यकता नहीं रह जाती। आज के हिन्दी कवियों में इस प्रकार के कवि विरल ही हैं।

श्री ओमप्रकाश खण्डेलवाल के इस काव्य की उत्कृष्टता केवल उसमें अभिव्यक्त सामाजिक विचार धारा और आदर्शवादी दृष्टिकोण के कारण ही नहीं है, बल्कि उसमें काव्यत्व भी पर्याप्त मात्रा में वर्तमान है। इसे भावात्मक स्तर पर प्रेम का काव्य कहा जा सकता है जिसमें नायक-नायिका का सौन्दर्यानुभूति जन्य वैयक्तिक प्रेम क्रमशः उदात्त देश प्रेम और मानव-प्रेम के रूप में परिणत हो जाता है। इस दृष्टि से रवि-रश्मि की तुलना पं० रामनरेश त्रिपाठी के प्रख्यात प्रबन्ध काव्यों—'पथिक' और 'मिलन' से की जा सकती है। उक्त दोनों काव्यों में भी वैयक्तिक प्रेम देश प्रेम में घुल-मिल गया है। रामनरेश त्रिपाठी के समान ही श्री खण्डेलवाल ने भी प्रकृति के सौंदर्य को भी मानवीय सौंदर्य से कम महत्व नहीं दिया है और जहाँ भी अवसर प्राप्त हुआ है, प्राकृतिक सौन्दर्य का मनोहारी चित्रण किया है। काव्य के नायक और नायिका दोनों ही प्रकृति के रूप सौन्दर्य में आकण्ठ निमग्न होते दिखाये गये हैं किन्तु दोनों का यह सौंदर्य प्रेम उनके समाज-प्रेम और देश प्रेम में बाधक नहीं बनता, बल्कि उसे और भी व्यापकता और उदात्तता प्रदान करता है। अतः यह बात निस्संकोच कही जा सकती है कि 'रवि-रश्मि' विराट प्रेम का काव्य है जिसमें वैयक्तिक प्रेम, प्रकृति प्रेम, समाज प्रेम, देश प्रेम और मानव प्रेम सभी एक साथ समाविष्ट हो गये हैं।

'रवि-रश्मि' कवि की प्रथम प्रबन्धात्मक कृति है अतः उसमें कहीं-कहीं भाषा-गत और छन्दगत शैथिल्य दिखाई पड़ सकती है किन्तु शब्द चयन और अभिव्यक्ति की सहजता की दृष्टि से इस काव्य में पर्याप्त प्रौढ़ता दृष्टिगत होती है। मैं आशा

करता हूँ कि हिन्दी के रसज्ञ काव्य प्रेमी इस अभिनव कवि की प्रथम काव्य कृति का सहृदयतापूर्वक स्वागत एवं अभिनन्दन करेंगे।

शम्भुनाथ सिंह

सी १४/१६८बीं—२
सोनिया, वाराणसी
२४-३-८२

निवेदन

काव्य कवि के व्यक्तित्व का दर्पण होता है। कवि के हृदय-सिन्धु में कल्लोल करने वाली असीम एवं अनंत भाव ऊर्मियों की झांकी के रूप में कविता प्रस्फुटित होती है। कविता त्रिवेणी के समान पावन, सत्य, शिव एवं सुन्दर का अनूठा संगम है।

कवि मानव जीवन के विविध चित्र प्रस्तुत कर ऐसे तथ्यों को उजागर करता है जो स्वयं सिद्ध एवं त्रिकालाबाधित सत्य हैं। अपने हृदय की तीव्रतम अनुभूतियों को वह शब्दों का परिधान पहना कर, कल्पना के सौन्दर्य से सुसज्जित कर उसमें ऐसा माधुर्य भर देता है कि उसकी रचना में पाठक के हृदय की वीणा के तारों को झंकृत करने की असीम सामर्थ्य होती है। कविता बनाई नहीं जाती अपितु स्वतः प्रस्फुटित होती है वह कवि के हृदय की संवेदनाओं की सहज परिणति है। कविता जब बनाई जाती है तब वह अपनी स्वाभाविकता खो बैठती है और इसीलिये वह निष्प्राण हो जाती है। इसीलिये बुद्धि प्रधान रचनाओं में सामान्यतया भावोत्पादकता की शक्ति का अभाव पाया जाता है। कवि के हृदय-सागर में उफनते हुए ज्वार को उसकी लेखनी सुंदर भाव पूर्ण शब्द चित्रों का स्वरूप प्रदान करती है।

कवि के मन की पीड़ा भावनाओं के सजीव चित्रों में ढल कर उसके हृदय में लोकोत्तर आनंद की निष्पत्ति करती है और वही लोक मंगल का सशक्त एवं सक्षम उपकरण भी बन जाती है। कवि अपनी भावनाओं के द्वारा केवल धरा से गगन तक की दूरी ही नहीं नापना चाहता अपितु रवि, शशि, ग्रह, नक्षत्रादि की परिधि के परे, समस्त सीमाओं को पार करता हुआ उस असीम सत्ता से निकटता स्थापित करता है जो इस भूतल पर समस्त कार्यों का कारण है। इस प्रकार के मूल्यवान क्षण जीवन में यदा कदा आते हैं; कविता इन्हीं दुर्लभ क्षणों की वाणी है। कवि की साधना उसके काव्य में तेजस्विता उत्पन्न कर और अधिक मुखरित हो उठती है।

कविता के रंगमंच पर कल्पना का उपयोग भाव चित्रों में रंग भर कर उनमें

जीवन्तता उत्पन्न करने के लिये किया जाता है। कल्पना सदा भाव की अनुगामिनी होनी चाहिए किन्तु जब कल्पना भाव लोक की परिधि को लांघ कर अपनी शक्ति का स्वतंत्र रीति से प्रदर्शन करने लगती है तब वह पाठक के हृदय-गगन पर केवल क्षणिक विद्युत चमत्कार सा प्रभाव ही डाल सकने में समर्थ रह पाती है।

शिल्प यदि कविता की देह है तो भाव उसकी आत्मा है। एक की कल्पना दूसरे के बिना सम्भव ही नहीं है। शिव के अभाव में काव्य उद्देश्य विहीन हो जाता है। जो काव्य लोक मंगल के महत् उद्देश्य से अनुप्राणित नहीं होता वह समाज जीवन में कोई रचनात्मक भूमिका निभाने में असमर्थ होता है। वह काव्य जो समाज की धड़कन का प्रतिबिम्ब नहीं है और जन मानस में स्पंदन उत्पन्न करने में असमर्थ है वह काव्य कहलाने का अधिकारी नहीं है अपितु वह सुन्दर शब्द जाल के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस प्रकार के काव्य-सौन्दर्य की तुलना यदि शव पर किये गये श्रृंगार से की जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। लोक मंगल की पवित्र भावना से प्रेरित काव्य लोक भाषा में ही होना चाहिये जिससे वह सर्वग्राह्य एवं मर्मस्पर्शी हो सके। दुरुह शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक रस निष्पत्ति से बाधक ही नहीं अपितु काव्य को अरुचिकर भी बना देता है।

अनेकानेक महान कवियों के काव्य-कुसुमों का मकरंद प्रतापगढ़ की धरती के कण-कण में इस प्रकार घुल मिल गया है कि उसकी सुवास दिन प्रतिदिन नये-नये काव्यान्कुरों के रूप में विभिन्न हृदयों में प्रस्फुटित होती रहती है। इसी का परिणाम है कि जिसने कभी कवि होने की बात स्वप्न में भी नहीं सोची थी वह व्यक्ति भी कवि हो गया। विद्यार्थी जीवन से ही कविता के प्रति अनुराग होने के कारण साहित्यिक आयोजनों में सम्मिलित होना मेरी रुचि का अपरिहार्य अंग था; परन्तु आयु के पैंतीस वर्ष तक मेरे अन्तर से कविता की एक पंक्ति भी नहीं प्रस्फुटित हुई। इसमें संदेह नहीं है कि जनपद में समय समय पर होने वाले साहित्यिक-समारोहों ने मुझे कविता के पथ पर अग्रसर करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

सामान्यतया कवि पर्याप्त साहित्यिक प्रौढ़ता, परिपक्वता एवं व्यावहारिक जीवन के विविध अनुभवों की निधि लेकर प्रबन्ध काव्य सृजन की ओर उन्मुख होते हैं परन्तु जब मैंने इस काव्य के सृजन का निश्चय किया उस समय साहित्यिक पूंजी के नाम पर मेरे पास केवल दस कविताएँ थीं जिन्हें आज कविता कहने में भी मुझे संकोच का अनुभव होता है।

काव्य-जगत में मेरा प्रवेश सन् उन्नीस सौ सतहत्तर में हुआ। 'रवि-रश्मि' काव्य की रचना जुलाई अस्सी से जून इक्यासी के अंतराल में संभव हो सकी।

प्रारंभिक सोपानों पर क्रमशः पग रखकर भवन की छत पर चढ़ने में कठिनाई नहीं होती परन्तु मैंने सीढ़ियों पर पाँव धरे बिना छत पर चढ़ने का जो निश्चय किया इसके कारण मुझे इस काव्य के सृजन में बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा क्योंकि उस समय तक मुझे कविता के सम्बन्ध में प्रारम्भिक ज्ञान भी न था; यहाँ तक कि छंद और तुकों की भी विशेष जानकारी न थी अतः मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि 'रवि-रश्मि' काव्य का सृजन मैंने साहित्यिक निधि के अभाव में प्रारम्भ किया अतः प्रस्तुत काव्य की रचना को माँ सरस्वती के चमत्कार-पूर्ण वरदान के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता परन्तु यह उनकी ही महती कृपा थी जो उन्होंने इस कार्य का माध्यम मुझे बनाया।

प्रतिदिन चौदह घण्टे की अत्यधिक, अपरिहार्य व्यावसायिक व्यस्तता के पश्चात निजी दस घण्टे में से अधिकांश समय लगाकर एक वर्ष में इस काव्य की रचना संभव हो पाई। इसमें संदेह नहीं है कि मेरे व्यक्तिगत जीवन की मरुथलीय शुष्कता में कविता की निर्झरिणी ने आशातीत सरसता का संचार कर दिया। कल्पना लोक में एक नया संसार ही बस गया।

हिन्दी साहित्य-जगत के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान, समीक्षक एवं सुकवि डा० शम्भुनाथ सिंह जी ने 'रवि-रश्मि' का स्नेहासिक्त प्राक्कथन लिखकर मुझे गौरवान्वित किया है। मैं हृदय से उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना कर्त्तव्य मानता हूँ। हिन्दी साहित्य में डा० शम्भुनाथ सिंह जी साहित्य के प्रति एकान्तिक निष्ठा, अक्षय अनुराग एवं निष्काम समर्पण के प्रतीक हैं। उनके निजी व्यक्तित्व और साहित्यिक व्यक्तित्व में विभेद कर पाना संभव नहीं है इसलिये मैं कहता हूँ कि उनका मनीषी व्यक्तित्व साहित्य का पर्याय बन गया है। उज्जैन विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति एवं हिन्दी के प्रख्यात विद्वान तथा सुकवि डा० शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने नगरागमन के अवसर पर इस काव्य के सृजन के शैशवकाल में मुझे अत्यधिक उत्साहित किया। काव्य सृजन के समय हिन्दी के विद्वान, समीक्षक एवं कवि डा० रामचरित्र सिंह ने मेरा पर्याप्त उत्साहवर्धन किया। महाकवि गुलाब खंडेलवाल ने अनवरत अध्ययन एवं चिंतन की प्रेरणा प्रदान की। महाकवि हरिहर वक्श सिंह 'हरीश' ने हृदय-गगन से टपकने वाली प्रत्येक बूंद को मोती सा सँवार दिया। मैं इन सभी अग्रज कवि बन्धुओं के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। इनके अतिरिक्त श्री रामइकबाल त्रिपाठी 'अनजान', श्री कैलाश गौतम, श्री रामचन्द्र 'कमलेश' ने समय-समय पर मेरा पर्याप्त उत्साह वर्धन किया है मैं उनके प्रति भी आभारी हूँ।

'रवि-रश्मि' काव्य मेरे कवि जीवन का प्रथम प्रयास है इसमें विद्वानों एवं

समीक्षक बन्धुओं को पर्याप्त न्यूनतायें एवं त्रुटियाँ भी मिल सकती हैं परन्तु यदि इस प्रबन्ध काव्य की एक भी पंक्ति सहृदय काव्य प्रेमियों के हृदय में काव्योचित स्पंदन उत्पन्न करने में सफल होगी तो मैं अपने श्रम की सार्थकता समझूँगा। यह अकिंचन भेंट आपके हाथों में प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है।

दीपावली,
१५ नवम्बर १९८२
प्रतापगढ़

ओमप्रकाश खण्डेलवाल

इतिवृत्त

रवि-रश्मि कल्पित कथानक पर आधारित प्रबन्ध काव्य है। इस कथा का नायक रवि एवं नायिका रश्मि हैं। रवि अपने पिता की एकमात्र संतान है। माता की मृत्यु उसके बाल्यकाल में ही हो जाती है। रश्मि के पिता युद्धभूमि में वीरगति प्राप्त करते हैं। अचानक रवि एवं रश्मि का परिचय होता है। रवि के मन में रश्मि की दीन-हीन दशा जान कर स्वाभाविक रीति से करुणा उत्पन्न होती है।

रवि एक उत्साही एवं समाज सेवी नवयुवक हैं। मानव की सेवा करने में उसे सुख मिलता है। सम्पूर्ण नगर सहसा विनाशकारी बाढ़ की विभीषिका से ग्रस्त हो जाता है। मानवता रवि का जीवनादर्श है। वह अपने प्राणों की बाजी लगा कर बाढ़ से घिरे हुये लोगों की सहायता करता है। बाढ़ में रश्मिका भवन गिर जाता है। बाढ़ सहायता-शिविर में रवि से उसकी भेंट होती है। रश्मि उसकी सेवा भावना से प्रभावित होकर उसके साथ नाव में बैठ कर सेवा कार्य में संलग्न हो जाती है। अचानक तेज वायु के झोंके से नौका डगडमगाती है। रश्मि भयभीत हो उठती है; रश्मि की चिन्तित मुद्रा देख कर रवि उसे सहारा देने के लिये उसकी बाँह पकड़ लेता है किन्तु यह पल भर का स्पर्श मात्र ही रवि के मन में एक तूफान का स्वरूप ले लेता है।

वह कुछ ही क्षणों की निकटता रवि के हृदय में प्रेम के अंकुर के रूप में फूट पड़ती है वह रश्मि को अपनी बाँहों में देखना चाहता है। अपने घर में सोते समय वह रश्मि को स्वप्न में देखता है और प्रातःकाल वह रश्मि के घर पर पहुँच जाता है और प्रणय निवेदन करता है। परन्तु रश्मि एक सुशील एवं आदर्श भारतीय नारी है वह उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है। उसी समय रश्मि की माँ संगम से स्नान करके आती है। रवि अपने जन्म दिवस समारोह में आने के लिये उन्हें आमंत्रित करता है।

रश्मि अपनी माँ के साथ जन्म दिवस के अवसर पर रवि के आवास पर जाती है। रवि के पिता रश्मि की सुन्दरता एवं अन्य गुणों से प्रभावित होकर उसकी माँ से रवि के साथ रश्मि के विवाह का प्रस्ताव करते हैं जिसे उसकी माँ सहर्ष स्वीकार कर लेती है और दोनों का विवाह हो जाता है।

विवाहोपरांत युगल कुंभ मेले में जाते हैं। साधु सन्तों के प्रवचन सुनकर रश्मि के मन में परिवर्तन होता है और वह रवि को उसके समाज सेवा के संकल्प

की, जिसे वह भूल चुका है, याद दिलाती है। दोनों ग्रामोदय का संकल्प लेकर 'सेवापुर' गाँव जाते हैं। ग्रामवासियों के सहयोग से वे गाँव को एक आदर्श सामाजिक इकाई के रूप में विकसित करते हैं तथा व्यक्ति-व्यक्ति के मन में देश-भक्ति के भाव जागृत करते हैं। वे 'मीना' नाम की एक हरिजन बाला के, जो सामाजिक परिस्थितियों के कारण पतिता हो गई थी, हृदय में परिवर्तन लाकर उसे समाज में सम्मान का स्थान दिलाते हैं। मीना नारी निकेतन की संचालिका बन जाती है। दस्यु 'रहीम' रवि के विलक्षण व्यक्तित्व से प्रभावित होकर देश के लिये सब कुछ उत्सर्ग कर देता है।

इस रचना के द्वारा भारतीय सामाजिक जीवन की विविध समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

ओम प्रकाश खण्डेलवाल

अनुक्रम

अनुभूति

पग - पग पर दिखलाई देती
नई चेतना की छवि छाई;
जड़ हो या चेतन सबमें थी
एक मृदुलता सी मुसकाई।

आया धरती पर नव - जीवन
दिखलाई देती हरियाली;
नील गगन में सजती मानों
तारों की जगमग दीवाली।

खोल रही रजनी का घूँघट
नव प्रभात की किरण नवेली;
कोमल - कलियों पर मँडराते
भँवरे करते थे अठखेली।

लतिका सी भुज - वल्लरियों से
अपना आँचल सरकाती सी;
सुरभित सुमनों का पी मरंद
मृदु वायु चली कुछ गाती सी।

कुसुमित - कुंजों के बीच एक
युवती उड़ती थी तितली सी;
ज्यों घिरी घटा में चमक रही
हो, चंचल स्वर्णिम बिजली सी।

कलित कपोलों पर लहराते
काले कुंतल लटक रहे थे;
सुधा पान को चन्द्र परिधि
में, ज्यों श्यामल घन भटक रहे थे।

शुभ्र भाल पर कुंकुम टीका
लगता स्वर्णिम भाग्य लिखा सा;
रजत पटल पर था वह शोभित
पावन अरुणिम दीप-शिखा सा।

कर्ण - स्वर्ण की सीपी जैसे
शोभित थे अविराम हो रहे;
तरुण - अरुण किरणों के दल
थे, आनन पर सौंदर्य बो रहे।

हरे - गोल - कुण्डल कपोल पर
इधर - उधर कुछ झूम रहे थे;
ज्यों गुच्छे अंगूर लता के
स्वयं लता को चूम रहे थे।

एक युवक टकटकी लगाये
उसको देख रहा अपलक था;
उठा ज्वार मन के भीतर ज्यों
शिर लहरों का रहा पटक था।

चेतना पटल पर छाया था
आवरण निराशामय तम का;
उस महातिमिर को चीर नई
आशा का नव-प्रभात चमका।

उसकी बाँहों में डोल रहा
था, यौवन का सागर अखंड;
था तेजयुक्त मुख मण्डल ज्यों
दोपहरी का दिनकर प्रचंड।

वह नयन कोर से देख रही
थी, सहमी सी, शरमाई सी;
नव-जीवन की मधुमय आशा
थी, पलकों में उतराई सी।

हृदय-सिन्धु कर रही तरंगित
थी, बार बार लहरें अछोर;
यौवन सागर तट पर प्यासी
लहरें शिर धुन कर रही शोर।

मुकुलित - कलिका से झुके नेत्र
पहले पल भर को सकुचाये ;
फिर उठने लगे सहमते से
होकर तिरछे दायें बायें।

कमल सदृश दृग मुसकाते थे
स्वागत हेतु प्रथम परिचय में;
एक डाल पर दो पंछी हों
मानों मिलते सूर्योदय में।

चरण युवक के बढ़ते जाते
परिचय पाने की आशा में;
मन के भाव मुखर हो जाते
चंचल नयनों की भाषा में।

अपने और परायेपन की
सीमाओं में सिमट न पाता;
हे सुंदर बाला! मैं "रवि" हूँ
अखिल सृष्टि से मेरा नाता।

किस शिल्पी ने कंचन की यह
सुंदर मूर्ति बनाकर ढाली ?
जीवन की बासंती बगिया
तेरी कौन सींचता माली ?

सुरसरित्-तट के पास बनी है
मेरी सुंदर छोटी कुटिया;
जीवित संतति अपनी माँ की
हूँ मैं एक अकेली बिटिया।

जीवित यदि रह जाता मेरा
प्यारा बड़ा कहीं वह भाई;
स्नेहिल छाया पाकर उसकी
फिरती इधर उधर इठलाई।

मृत्यु पिता की रण में अब तक
उर में तीर सदृश चुभती है;
बिना शत्रु का रक्त पिये अब
मन की प्यास नहीं बुझती है।

आंसू पीकर जीवित रहने
का मुझको वरदान मिला है;
मेरे अंतराल में जैसे
केवल दुख का गरल घुला है।

नाम "रश्मि" है पर प्रकाश की
मुझमें कोई बात नहीं है;
दर्द भरी काली रजनी में
आया सुख का प्रात नहीं है।

द्रवित हुआ जाता मन मेरा
सुन यह करुणा भरी कहानी;
देख रहा तेरी आंखों में
रह रह छलक रहा है पानी।

यह धूप छाँह का खेल नियति
इस धरती पर करती रहती;
मोती शबनम के रोती निशि
शशि किरणों में हँसती रहती।

है सदा निराशा - रजनी के
पीछे मुसकाता मधुर प्रात;
है सह लेता शुचि - संत - हृदय
प्रतिकूल क्षणों के पदाघात।

उस महा पुरुष का पुण्य नाम
हो गया देश की थाती है;
जिसकी यशगाथा सुनते ही
अंतर्ज्वाला जग जाती है।

यह धवल चंद्रिका सी वीरों
की कीर्ति धरा पर छायी है;
गंगा की लहरों ने उनकी
ही, गौरव गाथा गायी है।

जो देश धर्म पर मरते हैं
मर कर भी अमर कहाते हैं;
पुलकित जग के इतिहास पृष्ठ
नित उनके ही गुण गाते हैं।

पावन स्वदेश की माटी का
जिसके मन में अभिमान नहीं;
नर नहीं वरन् वह पशु ही है
मिलता उसको सम्मान नहीं।

निज देश जाति का मस्तक जो
है, ऊपर नहीं उठा पाता;
वह मातृभूमि का है कलंक
बस भार धरा पर बन जाता।

अंतर की पीड़ा अपनी है
बाकी तो सब कुछ छलना है;
सुख का दुख में, दुख का सुख में
ज्यों धूप छांह सा ढलना है।

● ●

अंकुर

बदली की काली कारा में
दिनकर बंद पड़ा था;
लेकर विद्युत् - दाम सामने
श्यामल मेघ खड़ा था।

दल - बादल कुछ गरज गरज
कर झर - झर बरस रहे थे;
जीव जन्तु असहाय पड़े
आश्रय को तरस रहे थे।

सरिता की प्रलयंकर धारा
घहर - घहर घहराती;
घिरी - घटा में विद्युत् गर्जन;
से, छाती कँप जाती।

सीमाओं को लाँघ चला
था, जल प्रवाह लहराता;
बंध तोड़ कर यौवन ज्यों
वश के बाहर हो जाता।

अति वर्षा से खंड प्रलय सा
दृश्य नगर में छाया;
कुपित इंद्र दिखलाते थे
ज्यों प्रतिपल अपनी माया।

झेल रहा आघात पपीहा
वन में अड़ा हुआ था;
बिना बुलाये मेह अतिथि
उसके घर खड़ा हुआ था।

वृक्ष, लता, पक्षी, सोये
जल की चादर के नीचे;
सरि - प्रवाह के संग बहे
जाते थे आँखें मीचे।

कूप, पोखरों, नद, नालों का
कोई पता नहीं था;
मार्ग हुये अवरुद्ध न अब
जल, थल में भेद कहीं था।

खाल सुदृढ़ भवनों की
मानों वर्षा खींच रही थी;
छप्पर का उर चीर चीर
मरघट को सींच रही थी।

सिन्दूरी रेखायें कितनी
श्वेत हुईं धुलधुल कर;
स्मृतियाँ शेष रहीं उनकी
क्रंदन करतीं घुल घुल कर।

प्रेमालिंगन सुख सपने
थे, जल में सारे डूबे;
करुण कराहें गूंज रही
उनसे मानव थे ऊबे।

क्रूर - प्रकृति की लौह भुजा
में शक्ति प्रलय की आई;
असुर - सुन्दरी यथा कुपित
सी, मृत्यु निकट थी लाई।

दंभ चूर हो गया सेतु
का मदमाती धारा से;
विवश सिसकता झाँक रहा
था, बेचारा कारा से।

यौवन की मृदु - फुलवारी
में, सुमन अभी खिलने थे;
भाग्य किन्तु पहले खिलने
के, माटी में मिलने थे।

मिलन प्रात जिनके जीवन
में, शेष अभी आना था;
भग्न स्वप्न था हाय! और
कर मलते ही जाना था।

जीवन के संबंध जुड़े थे
जो कच्चे धागों से;
टूट टूट मिलते जाते
थे, वे फेनिल झागों से।

भित्ति - भग्न नौकाओं सी
तिरती थी लाशें जल में;
जल पी पीकर डूब रही
उतराती थी पल पल में।

किसका शव था पड़ा कहां
कोई पहचान नहीं थी;
शीश कहीं थे, वक्ष कहीं
टांगें कुछ पड़ी कहीं थीं।

बिखरे नर कंकाल पड़े
कुछ माटी में लिपटे थे;
नभ में मंडरा रहे गृद्ध
दल, लाशों पर झपटे थे।

गृद्ध शृगाल सड़ी लाशों
को, नोच नोच खाते थे;
पंच तत्व में लय होने
की याद दिला जाते थे।

जल थोड़ा हट गया किन्तु
शव ऐसे फंसे हुए थे;
टहनी में अटके थे कुछ
दल दल में धंसे हुए थे।

पर प्राणों की रक्षा में
कितनों ने जान गंवाई;
मृत्यु - ग्रास बन गये धर्म
की, किन्तु ध्वजा फहराई।

बाढ़ ग्रस्त जन की सेवा
के, हेतु - शिविर चलते थे;
करुण कथायें सुन जिनकी
दृग अम्बु छलक पड़ते थे।

मेला उजड़े परिवारों
का, बढ़ता ही जाता था;
एक दूसरे की विपदा
से, मन को समझाता था।

दृढ़ सेवा व्रत धारी था
"रवि" एक युवक अलबेला;
कठिन परिश्रम और लगन
से, करता कार्य अकेला।

दिखलाई पड़ गई झलक
उसको वितान के बाहर;
उपजी तीव्र व्यथा अंतर
में, यहां "रश्मि" को पाकर।

आहत मुरझायी लतिका
सी सम्मुख खड़ी हुई थी;
विपदाओं का बोझ लिये
लज्जा से गड़ी हुई थी।

"रवि" से मिल अभ्यंतर की,
पीड़ा वह रोक न पायी;
रुद्ध कंठ कुछ कह न सकी
यादें चित्रित हो आयी।

मन की पीड़ा नयनों से
आंसू बन कर बहती थी;
फटे वस्त्र में लिपटी
काया, ही सब कुछ कहती थी।

बोला रवि तुम सोच त्याग
बस प्रभु पर करो भरोसा;
संकट दूर करेगा वह
जिसने है पाला पोसा।

काल चक्र की गति के आगे
वश किसका चलता है;
बना खिलौना नियति करों
में, यह मानव पलता है।

दास परिस्थितियों का ही
पड़ता मानव को होना;
प्रखर अग्नि में पड़कर ही
पाता निखार है सोना।

बोली वह जीवन मरु में
आए बन पावस धारा;
डगमग जीवन नौका को
बढ़, तुमने दिया सहारा।

अंधकारमय जीवन पथ
पर ज्योति पुंज से आये;
पतझड़ के झंझावातों
में, ज्यों बसंत मुसकाये।

मनुज वही जो पर पीड़ा
अपने अंतर में पाले;
पर नयनों के अश्रुकणों
को, निज नयनों में ढाले।

पर पीड़ा से तप्त हृदय
जिसका कि मोम सा पिघले,
प्यार सुधा दे औरों को
जो, गरल स्वयं ही पीले।

जन्म सफल उस मानव का
जो परहित में है जीता,
और दूसरों के अंतर
के, घावों को है सीता।

स्पंदन भाव ऊर्मियों का
जीवित उर में है होता,
संवेदन से शून्य हृदय
पाषाण सदृश है सोता।

दीपक त्याग और करुणा
का, जल जाये जब मन में,
उतरे हो भगवान धरा
पर, ज्यों मानव के तन में।

जन-जन की सेवा करता
कर्त्तव्य मानकर अपना;
यह कोई उपकार नहीं
मेरे जीवन का सपना।

चित्रकार है एक जगत
में, चित्र अनेक बनाता;
भाँति-भाँति के रंगों से
वह निशिदिन उन्हें सजाता।

सुरभि सुमन में, दाह अग्नि
में, जल में शीतलला है;
प्राण बना अगणित रूपों
में, एक सत्य रमता है।

एक सत्य है जड़ चेतन
में, चारों ओर समाया;
जिसको मानव मूर्तरूप
में, अब तक देख न पाया।

होता है तादात्म्य जहाँ
अपना औरों के मन से;
सेवा, समरसता, सुकार्य
में, आभासित कण कण से।

ऊपर सीमित स्वार्थ - भाव
के, जो मानव बढ़ता हैं;
मौन दीप - सा जल कर इस
जगती का तम हरता है।

उर - नभ में संपूर्ण धरा
जब सिमट समा जाती है;
दिव्य दृष्टि पाकर आत्मा
पूनम - सी मुसकाती है।

गला - गला कर उर अपना
पर्वत निर्झर हो जाते;
स्नेह - सलिल से तृषित जनों
की प्यास बुझाने आते।

चन्द्र, दिवाकर, वृक्ष, ताल,
हैं क्या कुछ हमसे लेते ?
सुख - सुविधा - सुमनों से
भू का आँचल हैं भर देते।

धरती का कण - कण अपना
है, कुछ भी नहीं पराया;
सत्कर्मों के हेतु धरा
पर, हमने जीवन पाया।

उर - उद्यान प्रसूनों की
माला तुमको पहनाऊँ;
जन - हित के इस पुण्य यज्ञ
में, प्रति पल साथ निभाऊँ।

शैल - शिखर मिस ऊपर उठ
धरती नभ से बतियाती;
तुहिन - कणों का रुचिर कोष
मिलता, झोली भर जाती।

सागर की लहरों से शशि -
किरणें मिल कर इठलातीं;
जल - निधि के उर के दर्पण
में, उसकी छवि मुसकाती।

नेह - डोर में बँध मानव -
मन नभ में मँडराता है;
प्रीति - सरोवर में पंकज-
सा, खिलता मुसकाता है।

शक्ति प्रेम में है अद्भुत
जो जग को जीत सकी है;
बल - प्रयोग से विजय मिली
जो, क्या वह कभी टिकी है?

दो सरिताओं के मिलने
से, बन जाता संगम हैं;
मानव - मन दो मिले जहाँ
वह तीर्थ न कोई कम है।

सेवा का दायित्व बड़ा
पर कोई नहीं सहारा;
क्यों न उऋण हो जाऊँ मैं
भी, देकर साथ तुम्हारा ?

सेवा का दृढ़ व्रत दोनों
ले जा बैठे तरणी पर;
था उनका संकल्प स्वर्ग
बिखराने का धरणी पर।

हरित वर्ण परिधान बीच
शोभित थी मंजुल काया;
जल के दर्पण में पड़ती
थी, जिसकी मनहर छाया।

विरल बादलों - सी अलकें
मुख - मंडल पर मँडरातीं;
जैसे चन्द्र - कला छन - छन
मेघों से बाहर आती।

पूर्ण इंदु - सा भाल मध्य
था, सुंदर चंदन - टीका;
जल - दर्पण में कई गुना
बढ़ता आलोक उसी का।

वक्राकर्ण भवें अनंग
के, धनु - सी तनी हुई थीं;
दृग - निषंग में बरुणी शर -
सी घातक बनी हुई थी।

ललित कपोलों पर छायी
अरुणिम ऊषा की लाली;
बिम्बाधर - पुट लगता था।
ज्यों मादक मधु की प्याली।

गोरी बाहें नव चंदन
पल्लव - सी छवि थीं धारे;
विकच कंज - जैसे करतल
लगते थे प्यारे - प्यारे।

श्वासोद्वेलित वक्ष पड़ा
लगता यौवन का झूला;
पुलकावलि मिस अंगस्पर्श
से, ज्यों कदंब हो फूला।

सुधा घोलता जाता था
कोई मानो मानस में;
सतरंगी ऊर्मियाँ भाव
की, रह न सकीं अब वश में।

दृग - दर्पण में चित्र मुखर
हो, हँस कर बोल रहे थे;
मन में डुबकी लगा भेद
की, बातें खोल रहे थे।

मदिराया सौंदर्य देख
यह प्रकृति खड़ी मुसकाती;
अपनी छाया ज्यों दर्पण
में, देख पुलक सकुचाती।

तीव्र वायु के झोंके से
नौका डगमगा रही थी;
घबराई जब "रश्मि" बहुत
तब "रवि" ने बाँह गही थी।

पल भर में जो तप्त छुअन
मिल गयी अचानक तन को;
वह उत्तप्त कर गयी थी
विद्युत तरंग-सी मन को।

● ●

स्वप्न

मंगल - घट लेकर ऊषा
किरणों के रथ पर आई;
मंत्र सुनाती नव जागृति
का, गूँज उठी शहनाई।

कंचन - प्रात खिला घर - घर
में, सभी दिशायें हँसतीं;
स्वर्णिम - सपनों को कोई
नागिन न यहाँ थी डसती।

सरसों की पीली चूनर
पहने धरती मुसकाती;
कूक रही तरु - वासिन थी
मन - भावन गान सुनाती।

ओस - विन्दुओं मिस मोती
का हार प्रकृति पहनाती;
पंखुरियों के अधरों से
थी, सुधा बरसती जाती।

कलरव करते विहग - वृन्द
जागरण - गीत थे गाते;
डाल हिलाकर स्वागत में
तरु मानों पास बुलाते।

बदली बादल के सँग नभ
में, सुंदर रास रचाती;
तारक - मण्डित मण्डप से
रस घोल - घोल छलकाती।

नखत - हार धारे निशि - बाला
गिरि - शिखरों पर आई;
छिपे ओट में दिनकर ने
अपनी बाँहें फैलाईं।

सज सोलह श्रृंगार यहाँ
पर, प्रकृति - परी आई थी;
पोर - पोर में मचल रही
ज्यों उसकी तरुणाई थी।

निद्रित था "रवि" देख रहा
कुछ सुन्दर स्वप्न सुनहरे;
तिरता सुख के सागर में
था, ऊपर, नीचे, गहरे।

हृदय - सिंधु में सुप्त लहरियाँ
थीं, अब तक अलसाई;
करवट बदल रही जैसे
लेती हो अँगड़ाई।

स्वर्गलोग से स्वप्न - सुंदरी
ज्यों सज कर हो आई;
मंजुल मोहक मूर्ति "रश्मि"
की, उसको पड़ी दिखाई।

चंचल - मूक - चेतना ने
मानों वाणी हो पाई;
चेतन - पट पर शब्द - चित्र
बन, भाव - ऊर्मियाँ आईं।

"मिल गई "रश्मि", मुझको
जैसे कोई अमूल्य हो रत्न मिला,
रक्खूँ मैं तुझे कहाँ कैसे
छायी तू जैसे चन्द्र - कला।

तुमको पाकर इस बगिया
की, हर कली-कली खिल जाती है;
सावन की सरस बहारों में
जैसे धरती मुसकाती है।

बढ़ गई गन्ध इन फूलों में
जब से तुम मेरे मन भायीं;
पौधे भी डाल हिला करके
कर रहे तुम्हारी पहुनाई।

मेरी श्वासों में गूँज रही हैं
मधुर मिलन की शहनाई;
सुर-पुर से सुंदरी परी एक
ज्यों मेरे आँगन है आई।

आँचल की मोहक छाँव प्रिये
लगती है मुझको अमराई;
तुम चलती हो ऐसी जैसे
सावन में शीतल पुरवाई।''

निद्रा टूटी ढूँढ़ रहा था
वह सपनों की रानी;
अर्द्ध प्रदर्शित ही पट पर
होकर, रह गई कहानी।

खिले कंज-से मृदुल भाव
पर, ज्यों हिम-पात हुआ था;
बौराई अमराई पर
जैसे पवि-पात हुआ था।

लाकर मुख के पास हटा
ले, जैसे कोई प्याला;
इधर - उधर कुछ ढूँढ़ रहा
था, होकर वह मतवाला।

था उदास मन खोज रहा
वह कुछ खोया - खोया - सा;
ज्यों अमूल्य निधि खोकर हो
कोई रोया - रोया - सा।

वेग ज्वार का मन के
सागर में बढ़ता जाता था;
संवेगों की तरल - तरंगों
में, बहता जाता था।

उद्वेगों की आँधी में
तृण - सा उड़ता बेचारा;
असंतुलित मन था अधीर
वह परवशता का मारा।

निकल पड़ा पागल प्रेमी -
सा, था वह अपने घर से;
पहुँचा "रश्मि' सँवार रही
थी, सुमन - क्यारियाँ कर से।

चुंबन कर जाता समीर
पंखुरियों के अधरों का;
सुरभि - कटोरों के रस पी
इठलाता दल भ्रमरों का।

लिये हजारा सींच रही
थी, वह फुलवारी सुंदर;
भाव - लोक में विचर रही
थी, जल गिरता था बाहर।

"प्राण ! न जाने तुम पौधों को
कैसे सींच रही हो ?
गहन विचारों में डूबी
जाने क्या सोच रही हो ?

जाने कैसा जादू मन पर
है, तुमने कर डाला;
सपनों में पाकर तुमको
मैं, विकल हुआ मतवाला।

हर ऊषा मेरे जीवन
की, अब उदास होती है;
संध्या तम में मुख ढक कर
अब, वंध्या - सी रोती है।

रजनी - दिवस - मिलन मेरा
उपहास किया करता है;
मधुर वेदना मानस को
मधुमास दिया करता है।

चाह रहा हूँ दृग - कपाट
में, अनुपम मूर्ति सजाऊँ,
प्रेम - प्रसूनों की माला
निशि - दिन तुमको पहनाऊँ।

शरद - पूर्णिमा, हृदय - गगन
पर, बन कर तुम मुसकाती;
धवल चन्द्रिका के मिस मन
में, रूप - सुधा बरसाती।

मेरे नयन मीन बन कर
तब उर सरिता में तिरते;
प्रिये तुम्हारे दृग - पंकज
मन में मादकता भरते।

लेकर पवन सुरभि आता
पाकर मृदु परस तुम्हारा;
भरता सिहरन रोम - रोम
में, बहती आँसू - धारा।

मेरे मानस - मंदिर में
शुचि आशा - दीप जलाओ;
शीतल निर्झरिणी - सी तुम
जीवन - मरु को सरसाओ।"

कहा "रश्मि" ने "भावुक कवि -
सा, कोमल हृदय तुम्हारा;
मन - कानन को कर देती
शीतल, आँसू की धारा।

है उपकार तुम्हारा मुझ
पर, भूल नहीं पाऊँगी;
साथ तुम्हारे प्रीति - पंथ
में, पर कैसे जाऊँगी ?

सामाजिक मर्यादाओं
को, कैसे तोड़ सकूँगी ?
अपने कुल की परिपाटी
को, कैसे छोड़ सकूँगी ?

माता के आदेश बिना
मैं संग नहीं जाऊँगी;
कुल - कलंकिनी बन कर जग
में, कैसे जी पाऊँगी ?

मेरे पास धरा क्या जिस
पर तुम रीझे फिरते हो ?
व्यर्थ परिश्रम तृण - तरु की
समता का क्यों करते हो ?

यह सौभाग्य बड़ा मेरा
मन में जो स्थान दिया है;
निर्बल नारी का जग में
तुमने सम्मान किया है।

कर्म - क्षेत्र में नारी की
भी, अपनी सीमा होती;
नहीं ध्यान जो रख पाती
है, पथ में काँटे बोती।

सीता माता को मैंने
आदर्श चुना है अपना;
उनका सा जीवन जीकर
मैं, पूर्ण करूँगी सपना।

मन पर संयम रख कर
ही, मानव ऊपर उठता है;
डोर हाथ से छूट गई
जब, वह नीचे गिरता है।

रह कर मानव मर्यादा
में, पुरुषोत्तम बन जाता;
जिनका यश इतिहास सदा
गर्वित हो हमें सुनाता।

यौवन की चिकनी राहों
पर, बहुत अधिक फिसलन है;
संयम का यौवन बैरी
है, संयम ही जीवन है।

तनिक चोट ही में यदि शिशु–
से, रोने लग जाओगे;
जीवन की लम्बी यात्रा
तुम, कैसे कर पाओगे ?"

चुन-चुन कर निज डलिया में
पूजा के फूल सजाती;
मधुरिम भूल न कर बैठे
वह थी, मन को समझाती।

समय हुआ वापस संगम
से, घर माँ के आने का;
चलता आया है उनका
क्रम नित्य वहाँ जाने का।

●●

संवेदना

लेकर शिव का संदेशा
गंगा धरती पर आई;
यमुना सरस्वती दोनों
करतीं जिसकी पहुनाई।

संगम पर है धवल और
नीला जल आधा - आधा;
त्रिविध ताप हरता मज्जन
दर्शन से कटती बाधा।

धीरे - धीरे संगम - तट
से, माँ घर वापस आयी;
शिथिल, मंद, मृदु स्वर से थी
उसने आवाज लगाई।

"आई माँ" कह कर दौड़ी
वह देने हेतु सहारा;
भीगे कपड़ों को फैलाया
जल निचोड़ कर सारा।

बढ़ कर चरण छुये "रवि" ने
माँ ने आशीष लुटायें;
मन ही मन परिचय पाने
को, नयन - युगल अकुलाये।

"रवि का परिचय माँ मैंने
पहले भी था बतलाया;
बाढ़ - शिविर में थे जब हम
तब नाम वहाँ था आया।

लगा इन्होंने प्राण दाँव
पर, सबकी सेवा की थी;
जल में घिरे शिथिल जीवन
को, एक नई गति दी थी।"

"बेटी, आए द्वार अतिथि
का, तनिक न ध्यान दिया है;
किया नहीं सत्कार लेश
भी, और न मान दिया है।"

मुड़ कर "रवि" की ओर कहा
"फिर बेटा भीतर आओ;
अपने ही घर में न अपरिचित
का सा रूप दिखाओ।"

सुन माँ की वात्सल्य - मयी
बातें सहमा सकुचाता;
बोला "रवि" माँ के चरणों
में सादर शीश झुकाता।

"जन्म दिवस मेरा परसों
है, माँ आशीष लुटाना;
एक विनय है और "रश्मि"
को साथ - साथ ले आना।

"आऊँगी", बोली माँ "रवि"
से, जन्म - दिवस पर तेरे;
जीवन - पथ पर हों मधुमय
बसंत के अनगिन फेरे।

जब से बेटे "चंदन" को
है, क्रूर नियति ने छीना;
लिखा भाग्य में है मेरे
बस रो - रोकर ही जीना।

स्मृति - बयार आकुल अंतर
के घाव हरे कर जाती;
देख तुझे बरबस "चन्दू"
की छाया - सी उतराती।

हूँ बिपदाओं की मारी
मैं, प्राण - रहित जीती हूँ;
"रश्मि" हेतु जीवन मेरा
यह, बस आँसू पीती हूँ।

भोग रही जो पूर्व - जन्म
के, कर्मों का ही फल हैं;
गये दिनों की सुधियों से
मन, आज हुआ विह्वल है।"

बोला रवि "जीवन बुदबुद -
सा, इसका नहीं ठिकाना;
जो भी आता है इस जग
में, पड़ता उसको जाना।

एक समान समय जीवन
में, नहीं सदा रह पाता;
सुखी वही है इस जग में
जो, दुर्दिन को न भुलाता।

सुख की छाया ही दुख में
है, दुख की सुख में होती;
पूनम में रजनी हँसती
है, अमा निशा में रोती।

सुन माँ की वात्सल्य - मयी
बातें सहमा सकुचाता;
बोला "रवि" माँ के चरणों
में सादर शीश झुकाता।

"जन्म दिवस मेरा परसों
है, माँ आशीष लुटाना;
एक विनय है और "रश्मि"
को साथ - साथ ले आना।

"आऊँगी", बोली माँ "रवि"
से, जन्म - दिवस पर तेरे;
जीवन - पथ पर हों मधुमय
बसंत के अनगिन फेरे।

जब से बेटे "चंदन" को
है, क्रूर नियति ने छीना;
लिखा भाग्य में है मेरे
बस रो - रोकर ही जीना।

स्मृति - बयार आकुल अंतर
के घाव हरे कर जाती;
देख तुझे बरबस "चन्दू"
की छाया - सी उतराती।

हूँ बिपदाओं की मारी
मैं, प्राण - रहित जीती हूँ;
"रश्मि" हेतु जीवन मेरा
यह, बस आँसू पीती हूँ।

भोग रही जो पूर्व - जन्म
के, कर्मों का ही फल हैं;
गये दिनों की सुधियों से
मन, आज हुआ विह्वल है।"

बोला रवि "जीवन बुदबुद -
सा, इसका नहीं ठिकाना;
जो भी आता है इस जग
में, पड़ता उसको जाना।

एक समान समय जीवन
में, नहीं सदा रह पाता;
सुखी वही है इस जग में
जो, दुर्दिन को न भुलाता।

सुख की छाया ही दुख में
है, दुख की सुख में होती;
पूनम में रजनी हँसती
है, अमा निशा में रोती।

करो न किंचित भी चिन्ता
तुम, मैं भी पुत्र तुम्हारा;
तुम करुणा - सरिता हो माँ
मैं, उसका एक किनारा।

स्नेहिल अंचल की छाया
यदि पाता मैं जीवन में;
ममता की डोरी से बँध
कर, उड़ता नीलगगन में।"

बोली माँ "मेरे जीवन
की, क्षीण हुयी है आशा;
डोल रही हूँ इस धरती
पर, लिये एक अभिलाषा।

पीले हाथ करूँ बेटी
के, यदि सुयोग्य वर पाऊँ;
चित्ताकर्षक गुणी युवक
से, इसका ब्याह रचाऊँ।

इसे देख कर जाता है
जो, नहीं लौट कर आता;
हमें मिलेगा क्या दहेज
में, प्रश्न यही कर जाता?

इतना अर्थ - प्रधान हुआ
है, दिन - प्रतिदिन का जीवन;
मानव - मन पर भी चलता
है, केवल धन का शासन।"

मन उधेड़ - बुन में उलझा
"रवि" ले घर वापस जाता;
होता सत्य कठोर जगत
में, सहज नहीं वह भाता।

सोच रही माँ सौम्य युवक
ने, मेरा हृदय लुभाया।
घने कुहासे में प्रकाश
के पुंज - सदृश था आया।

नहीं और कुछ ईश - कृपा
थी, जो वह घर पर आया;
चिन्तित मन की विकल धरा
पर, शीतल जल बरसाया।

••

हर्ष

घने निकुंजों बीच बसा
था, गृह "रवि" का अति सुंदर;
पहरा देते पास खड़े
थे, शीश उठाये तरुवर।

विहग टोलियाँ उतरीं नभ
से, थीं घर पर मँडरातीं;
आये द्वार अतिथियों को
वे, स्वागत - गान सुनातीं।

झालर लघु-विद्युत दीपों
की, क्षण - क्षण जलती - बुझती;
मानो नभ - गंगा भू पर
सीढ़ी से यहाँ उतरती।

लेकर नई किरण आशा
की वृद्धा माँ घर आई।
स्नेह - सुमन मंजूषा में
रख, साथ "रश्मि" को लाई।

"रवि" ने उनका वृद्ध पिता
से परिचय था बतलाया;
मन - मोहक सौन्दर्य "रश्मि"
का, था उनके मन भाया।

प्रथम दृष्टि में ही उसने
था, मन में स्थान बनाया;
सकुच पिता ने उसकी माँ
से, परिणय - प्रश्न उठाया।

बोली माँ "है एक यही
चिन्ता जो मन में रहती;
विपदाओं से जूझ रही
हूँ, पर चुप रह सब सहती।

है अभाव से परिपूरित
जीवन की करुण कहानी;
भ्रातृ - पितृ - सुख से वंचित
है, प्यारी बिटिया रानी।

बेटी सदा पराया धन
है, माँ की एक धरोहर;
कोई माँ रक्खेगी कब
तक, उसको अपने घर पर।

ईश्वर ही मेरी नौका
का, केवल एक सहारा;
फँसी भँवर में चाह रही
हूँ, मुझको मिले किनारा।

प्रभु का पूजन - अर्चन ही
मेरे जीवन का संबल;
देती है प्रति - पल मुझको
वह, जीवित रहने का बल।

अर्थ - व्यवस्था सबल नहीं
मेरी दहेज देने को;
परिणय के मिस चाह रहे
सब झोली भर लेने को।

है विवाह - अनुबन्ध आज
जीवन का धन से होता;
धन के पीछे जीवन का
मानव सारा सुख खोता।

घृणित रूप है जो दहेज
का, पहले कभी नहीं था;
मूल्यांकन केवल धन से
ही, होता नहीं कहीं था।

धन को केवल शास्त्रों ने
भी, साधन ही है माना;
धर्म - आचरण हो सम्भव
है, मोक्ष तभी मिल पाना।

दिखलाई पड़ रहा धर्म
का, कहीं नहीं अनुशासन;
आदर्शों से शून्य हुआ
जाता है मानव - जीवन।

"मेरे मन की इच्छाओं
को, दिया आपने स्वर है;
शून्य गगन में उड़ते खग
ने, पाया नूतन पर है।

मानवता ही धर्म मनुज
का, है मैंने पहचाना;
सीमित जीवन स्वार्थ - परिधि
में, सदा घृणित है माना।

वर्ग जाति - गत भेद - भाव
को, कभी नहीं है माना;
एक ईश की संतति है
सब इतना मैंने जाना।

उत्तम कृति मानव ईश्वर
की, भेद न इसमें कोई।
वर्ग-भेद की कारा में
बंदी मानवता रोई।

कृतियाँ अन्य सभी ईश्वर
की, क्या मानव से लेतीं?
सुविधा एक समान सभी
के, जीवन में भर देतीं।

धरा, मेघ, रवि, शशि, मानव
में, भेद नहीं हैं करते;
जन-जन के जीवन में हैं
वे, सुख समान ही भरते।

स्वाभिमान से शून्य व्यक्ति
याचक प्रवृत्ति हैं रखते;
लाभ उठा कर परवशता
का, घर दहेज से भरते।

पावन रूप "रश्मि" लक्ष्मी
का सुंदर और सलोना;
जायेगी जिसके घर में
सुरभित होगा हर कोना।

स्वर्ग वहीं बन जायेगा
यह जहाँ चरण धर देगी;
नई चेतना नव जीवन
दे, दुख सारा हर लेगी।

रजत - पूर्णिमा - सी आभा है
इसके मुख पर छाई;
आत्मा के अन्तर्प्रकाश
की, पड़ती है परछाँई।

दोनों के परिणय की यदि
स्वीकृति मिल जाती मुझको;
होता अति उपकार, शांति
मिलती तब मेरे मन को।"

"करती हूँ स्वीकार आज
पावन परिणय का नाता;
आये आप धरा पर बन
कर, मेरे भाग्य - विधाता।

चिंता - तप्त हृदय - धरती
पर आशा - मेघ बरसते;
युगल वाटिका में पल्लव
नव, और प्रसून विहँसते।"

सभी अतिथियों ने "रवि" को
आशीष दिया था मन से
स्वीकारा "रवि" ने उनको
निज श्रद्धा - पूर्ण नमन से।

● ●

समर्पण

परिणय के प्रिय बन्धन में
थे, युगल बँधे मुसकाते;
बाहों में बाँहें डाले
थे, गीत मिलन के गाते।

धरा - वक्ष पर शीश धरे
रजनी में अम्बर सोता;
तुहिन - कणों का रजत हार
प्रिय, देने हेतु पिरोता।

वायु विटप से लिपट - लिपट
चलती रोमांचित करती;
डुला - डुला कर - विजन - पात
मानों थकान थी हरती।

बोला रवि "मादक चितवन
से प्रिये मुझे नहलाओ;
मेरे मन - कानन में तुम
मधुरिम बसंत सरसाओ।

सरिता - तट पर खड़ा एक
तरु था मैं अब तक प्यासा;
पूर्ण हुई मेरे अन्तर की
है, अपूर्ण अभिलाषा।

जीवन - मरुथल में शीतल
झरने - जैसी तुम आई;
एक अकिंचन ने जीवन
में ज्यों अमूल्य निधि पाई।

उफनाई यौवन - सरिता
का, वेग नहीं रुक पाता;
तीव्र वासना की आँधी
में, मन - पल्लव उड़ जाता।"

"प्राण ! तुम्हीं मेरे नयनों
की, छवि अविराम बने हो;
मैं राधा हूँ नाथ तुम्हीं
मेरे घनश्याम बने हो।

तुम जीवन - धन हो बसंत
मैं पाटल - कली तुम्हारी;
तरुण अरुण जीवन - नभ के
मैं स्वर्ण - रश्मि - सुकुमारी।

सुख - सुहाग मंगल स्वामी
का, है मन की अभिलाषा;
पूर्ण समर्पण पति - चरणों
में, नारी की परिभाषा।"

वक्षोन्नत होता जाता
था, श्वासों के मिस क्षण - क्षण;
मानों देता आलिंगन
का, हो वह मौन निमन्त्रण।

मध्य रात्रि में पूर्ण इंदु -
सा, रूप सुधा बरसाता;
बादल - सा परिधान कभी
है, तन से जब हट जाता।

बोला रवि "प्रेयसि, मैं था
कल्पना जगत में खोया;
स्वर्गिक सुख की अभिलाषा
में कुछ जागा कुछ सोया।

पूर्ण प्रणय की इस उष्मा
से दीप प्राण का जलता;
बाहों में तुमको पाकर मैं
मोम समान पिघलता।

चरम शिखर पर चढ़ कर सुख
के, है मन नहीं उतरता।
प्रकृति - परी के अंग अंग
में, है नवरंग उभरता।

मिलन - मध्य व्यवधान बना
यह दिवस अकारण आता;
रजनी का सुख - स्वप्न सोच
कर, मन अतृप्त अकुलाता।

होता प्रेम असीम जगत
में, बंधन उसे न भाता;
लौह श्रृंखला में सागर
को, क्या कोई कस पाता ?

नहीं प्रेम को नेत्र मिले
जो भला - बुरा यह देखे;
मन की धरती का कंपन
जो चलता है अनदेखे।

स्वर्णारुण परिधान पहन जब
उषा धरा पर आई;
विनत "रश्मि" ने पति - चरणों
की रज थी शीश लगाई।

"पहिये मानव - जीवन - रथ
के, पुरुष और हैं नारी;
बिना समन्वय पथ में हैं
होती कठिनाई भारी।

जड़ को चेतन कर देती
वह शक्ति अलौकिक नारी;
भरती है विश्वास हृदय
में, जीवन में चिनगारी।

पर्वत - सा पौरुष झुकता
है, नारी की बाहों में;
शूल फूल बन मुसकाते
हैं, जीवन की राहों में।

सीता रघुवर के वाणों
में बन कर शक्ति समाई;
मोहन की राधा धरती
पर गीता बन कर आई।

कामलिप्त तुलसी रत्ना
के, कारण हुये विरागी;
राम समाये रोम - रोम
में, हुये राम - अनुरागी।"

● ●

५

प्रेरणा

संगम - तट पर लगा हुआ
था, अर्द्ध कुंभ का मेला;
जप, तप, यज्ञ, हवन होने से
सुरभित थी हर बेला।

भजन, ध्यान, सत्संग और
थे, प्रवचन प्रतिदिन होते;
मज्जन कर धारा में जन
थे, अंतर्मन को धोते।

कल - कल करती गंगा थी
जीवन - संगीत सुनाती;
कंचन, काम, कला, पूरित
कल का विश्वास जगाती।

सत, तम और रजोगुण का
सम्मेलन मानव' जीवन;
बना संतुलन तीन गुणों
का, संगम योगी का मन।

भिन्न - भिन्न पंथोपपंथ
के, मंडप यहाँ लगे थे;
और भक्त बैठे उनके
भीतर सब प्रेम पगे थे।

देव - पुरी मानों धरती
पर, यहाँ उतर कर आई।
अगणित साधु और संतों
ने, धूनी जहाँ रमाई।

भक्ति - भाव - पूरित दोनों
ही, यहाँ नित्य आते थे;
सदुपदेश सत्संग प्राप्त
करने को रम जाते थे।

संत एक अद्भुत आये
थे, कर्म प्रधान बताते;
सुधा - सिक्त वाणी से थे
वे, जन - मन को हरषाते।

आकर्षण था चुम्बक - सा,
उस महापुरुष के तन में;
प्रवचन सुन कर जादू - सा
हो जाता सब के मन में।

बोले "सत्संगति का रवि
पथ पर प्रकाश फैलाता;
सत्य असत्य विवेक भाव
को सदा बुद्धि उपजाता।

शतदल-सा है संत सदा
निर्लिप्त भाव से जीता;
घिरा हुआ माया से फिर
भी, है माया से रीता।

मानव की सेवा बढ़ कर
से, जग में धर्म नहीं है;
जिससे हो एकात्म-बोध
सर्वोत्तम कर्म वही है।

नहीं धर्म है मंदिर में
अब, घंटा नित्य बजाना;
देव-शीश पर भाव-हीन
सुमनों को नित्य चढ़ाना।

सेवा से आनंद-कुसुम
है, मानव मन में खिलता;
नर की सेवा के द्वारा
ही, नारायण भी मिलता।

नहीं स्वप्न में भी मानव
जो, चाहे बुरा किसी का;
सज्जन वह जग में वंदन
है, होता सदा उसी का।

पूज्य सदा वे चरण - कमल
जो, सेवा - पथ पर चलते;
कष्ट देख कर औरों का
जो, हिम - से रहे पिघलते।

वंदनीय कर - कमल वही
पावन, सुकार्य, जो करते;
सह कर कष्ट दूसरों के
जीवन में हैं सुख भरते।

स्वर्ग नर्क सब इसी धरा
पर, कर्मों का फल मिलता;
पुण्य - प्रसून पाप के तरु
में, नहीं कभी भी खिलता।

देखो दीन - हीन केवट
को, प्रभु ने गले लगाया;
देख सुदामा के दुख को
कान्हाँ ने नीर बहाया।

सत्य एक ही परमेश्वर
है, धरती और गगन में;
ज्ञान - मार्ग है कठिन किन्तु
है, सहज भक्ति जीवन में।

दृश्य नहीं पर कण - कण में
वह, बन कर प्राण समाया;
किया प्यार जिसने उसकी
रचना को, उसको पाया।

मंगल का जो मूल जगत
में, सत्य उसे स्वीकारा;
पूनम के शशि - सा करता
है, धरती पर उजियारा।

व्यक्ति व्यक्ति है सुमन देश
की, सुन्दर फुलवारी में;
रूप रंग है भिन्न किन्तु
सब, महक रहे क्यारी में।

है विराट यह राष्ट्र - पुरुष
भी, जीवित एक इकाई;
पूरकता जिसके कण - कण
में, है सर्वत्र समाई।

कोई भी विपदा उसके
जब किसी अंग पर आती;
शक्ति समूची उसी विन्दु
पर, है केन्द्रित हो जाती।

शक्ति एक सम्पूर्ण सृष्टि
में, सामंजस्य दिखाती;
रवि, शशि, मेघ और तारों
के द्वारा है प्रगटाती।"

डूबी चिंतन के सागर में
थी, चुपचाप डगर में;
सुन उपदेश "रश्मि" लौटी
थी, ले बोझिल मन घर में।

बोला "रवि" "क्यों गुम-सुम
सी, उदास बैठी हो रानी;
आती याद तुम्हें कोई
क्या बीती बात पुरानी ?"

बोल पड़ी "है ऋण समाज
का, मुक्त न इससे कोई;
इन्द्रिय-सुख-साधन बन कर
मैं, पथ भूली-सी खोई।

बँधे वासना के पाशों में
भूल गये वह सपना ?
आता याद नहीं तुमको
है, सेवा का व्रत अपना ?"

"ग्लानि - ताप से पिघल रहा
हूँ, देख दृगों में पानी;
क्षमा करो हे देवि ! मुझे
मैं हूँ पथ भूला प्राणी।

जन - सेवा की प्रखर अग्नि
पर, श्वेत आवरण छाया;
सुंदर माया - पट नेत्रों
के सम्मुख सजकर आया।

मोह - निशा ने छद्मवेश
धर कर दिनेश को घेरा,
लगा ग्रहण - सा है विवेक
को, तम ने डाला डेरा।

इतनी क्यों अधीर होती
हो, निश्चय मेरा सुन लो;
जन - जन की सेवा करने
को, ग्राम एक अब चुन लो।

चल कर उसी गाँव में हम
साकार करेंगे सपना;
मानवता के हेतु करें
हम, अर्पित जीवन अपना।

खोलेंगे सत्संग - केन्द्र
हम नगर ग्राम में जाकर;
नव युग का निर्माण करें
हम, सबका स्वार्थ मिटा कर।"

"रोम - रोम है पुलकित अब
मैं, फूली नहीं समाती;
पुत्र तुम्हारे जैसा पा
यह, धरा धन्य हो जाती।

जा न सकोगे एकाकी
तुम मैं भी साथ चलूँगी;
नारी - शोषण के विरुद्ध
मैं भी संघर्ष करूँगी।

उदासीन नारी - समाज
को चेतन मैं कर दूँगी;
बोध हृदय में कर्तव्यों का
उनके मैं भर दूँगी।

मानव - मन की सीमाओं
का हम विस्तार करेंगे;
सुंदर संस्कार द्वारा
उनमें सद्भाव भरेंगे।"

मातृ - पितृ की आज्ञा ले
चल बड़े युगल निज घर से;
ले निश्चय आदर्श ग्राम की
रचना का निज कर से।

छलक रहे दृग अंबु विकल
उर, दे दी उन्हें विदाई;
राम और सीता की छवि
थी, पड़ी उन्हें दिखलाई।

●●

परिवर्तन

बंधन तोड़ स्वार्थ-कारा
के, चले युगल मुसकाते;
सुंदर शिव, संकल्प हृदय
में, लेकर वढ़ते जाते।

विहग बंद थे जो पिंजरे
में, चले मुक्त मँडराते;
निकट पहुँचते ही असीम
के, पुलकित हो कर गाते।

चले युगल-तट सरिता के
ज्यों, सागर में खोने को;
अंश पूर्ण की ओर बढ़े
ज्यों उसमें लय होने को।

खिले कंटकों बीच सुमन
नूतन संदेशा लाये;
कठिन परिस्थितियों में भी
रह कर मानव मुसकाये।

विटप - डालियाँ हिल - हिलकर
थीं, आपस में बतियातीं;
शीतल छाया दे औरों को
वे प्रसन्न हो जातीं।

पवन सुरभि - मय संदेशा
था, दूर - दूर फैलाता;
जीवन - सुमन सुरभि - पूरित
होकर, मानव बन पाता ।

सीमा पर जब "सेवापुर"
की, पहुँचे सांध्य प्रहर था;
श्रमिकों का दल श्रांत - क्लांत
अब लौट रहा निज घर था ।

वहीं कूप पर एक वृद्ध
महिला थीं पानी भरती;
गई उसी के पास "रश्मि"
थी, परिचय उससे करती।

कंठ शुष्क था और मलिन
मुख बोली "मैं हूँ प्यासी;
थोड़ा सा जल मुझे पिला
माँ, भागे दूर उदासी।"

गई उन्हें ले कुटिया में
थी, तृप्त किया फिर जल से;
"आने का उद्देश्य भला क्या ?"
पूछा नवल युगल से।

"दीनों दुखियों की सेवा
का व्रत हम ठान चुके हैं;
अपना कुछ भी नहीं सृष्टि
में, हम यह मान चुके हैं।

निर्बल शोषित की सेवा
की निकले अलख जगाने;
माँ, हम तेरी पर्ण - कुटी
में, आ पहुँचे अनजाने।"

वृद्धा बोली कुछ सभीत
"सी, चूक हुई है भारी;
जल तो पिला दिया मैंने
पर, बात न उचित विचारी।

मैं अछूत, जल तुम्हें पिला
मैंने मर्यादा तोड़ी;
हाय, विधाता ने मुझसे
क्यों आँखें ऐसी मोड़ीं।"

बोला "रवि" "यह भेद - भित्ति
मानव ने स्वयं बनाई;
पूर्ति स्वार्थ की है जिसके
कारण उसकी हो पाई ।

खाकर जूठे बेर राम
ने, था क्या धर्म गँवाया ?
मानव - मानव की समता
का, था आदर्श निभाया ।

ऊँच - नीच के भेद, धर्म
है, नहीं कभी सिखलाता;
एक ईश की संतति हैं
हम, सत्य यही है नाता ।"

"तुम्हें भेज परमेश्वर ने
है, मुझको दिया सहारा;
आयी मेरे द्वार आज
है, पावन संगम - धारा ।"

"तेरे नयनों से माता
क्यों अविरल बहता पानी ?
तुम्हें याद आती कोई
क्या, करुणा - भरी कहानी ?"

"विपदाओं से बोझिल है
मन विकल हुआ अकुलाता,
तीव्र शूल मेरे अंतर
को, छलनी - सा कर जाता।

इकलौती "मीना" का ऋण
लेकर, था ब्याह रचाया;
ऊँचा पद पा उसके पति
ने है उसको ठुकराया।

ऋण के बदले कई वर्ष
से, खेतों में श्रम करती;
अंश अल्प ले उदर उसी
से, हूँ मैं अपना भरती।

भाग गई बेटी भी घर से
करती नृत्य नगर में,
ताने सभी मारते हैं
जो, मिलते ग्राम डगर में।

होकर दुखी पिता ने उसके
अपने प्राण गँवाये;
मरने को मैं भी उद्यत थी
पकड़ सभी ले आये।

नहीं यहाँ कोई जिसको
मैं खोल हृदय दिखलाऊँ;
नहीं स्वजन कोई जिसको
अपना यह दर्द सुनाऊँ।

साथ हमारे किया नियति
ने, बहुत बड़ा है धोखा;
मिलता दुख ही दुखी व्यक्ति
को, है यह नियम अनोखा।"

बोला "रवि" "यह नियम सृष्टि
का, सुख - दुख आता - जाता;
दुख की रजनी के अंचल
में, है प्रभात मुसकाता।

पाया संबल नवल नेह
का, इससे शक्ति मिलेगी;
लोहा सभी समस्याओं से
शक्ति वही अब लेगी।"

थका हुआ दिनकर किरणों
की हाट समेट चुका था;
तम के स्वागत में मानों
संध्या का शीश झुका था।

चला खोजने "मीना" को
"रवि" पहुँचा शीघ्र नगर में;
करती थी नर्तन प्रतिदिन
वह साँझ प्रहर निज घर में।

हुई सुसज्जित तितली - सी
मादक नर्तन करती थी,
बाँकी चितवन से भ्रमरों
में, उद्दीपन भरतो थी।

पहुँचा "रवि" यह दृश्य देख कर
हृदय हुआ कंपित - सा,
लोक लाज कारण उसका था
मन होता शंकित - सा।

चिंतित मुद्रा में बैठा
चुप था, भावों में डूबा,
नूपुर की झंकारों से
लगता मन ऊबा - ऊबा।

बोली "मीना" "सौम्य, तुम्हें
है, प्रथम बार ही देखा,
क्यों उदास बैठे हो मुख
पर, कैसी चिन्ता - रेखा ?

होता कोमल हृदय काँच - सा
टूट शीघ्र है जाता,
इच्छा के अनुकूल कार्य
जब, नहीं कभी हो पाता ।

लोहा भी आघातों में
पड़ कर जैसे मुड़ जाता;
खाकर चोट हृदय मानव का
राह नहीं अपनाता ।"

बोला "रवि" "सोचती कभी
क्या तुम भविष्य भी अपना ?
मधुप सभी उड़ जायेंगे
तब शेष रहेगा सपना ।"

लाज लुटी जाती थी, मैं
मन मारे खड़ा हुआ था;
खड़ा हुआ था पर लज्जा
से, भू में गड़ा हुआ था ।

एक नाव पर धरता पग
जो वही किनारा पाता;
दो नौकाओं पर चढ़ने
का यत्न व्यर्थ हो जाता ।

बोली "मधु ऋतु के पहले
पतझर ने लिया बसेरा;
छाया गहन तिमिर आशा
का आया नहीं सबेरा।

जीवन के सुंदर सपनों की
उजड़ गई जब बस्ती;
घृणा उपेक्षा के सागर में
डूबी मन की मस्ती।

मग्न हुआ मन-मुकुर नहीं
जीवन में दुख भी देखा;
झेल रही हूँ पड़ी नरक
में, लिखा भाग्य का लेखा।

तिरस्कार पाया मैंने
जो, इस समाज के द्वारा
चिंता किये बिना किंचित्
भी, तन का वसन उतारा।

भड़क रही प्रतिशोध - अग्नि
है, मेरे उर के अन्दर;
नहीं शांत जो हो पायी
है, जलती रही निरन्तर।

यहाँ व्यक्ति कोई चिन्ता
है, नहीं किसी की करता;
सब के अन्दर स्वार्थ-सिद्धि की
पाई है तत्परता।

आग लगे ऐसे समाज को
नहीं मुझे कुछ लेना;
मुझमें अब क्या शेष रहा
जिसको चाहूँगी देना?

आती घर की याद कभी
तब मैं अधीर हो रोती;
पीड़ा से बोझिल सावन
की वर्षा दृग से होती।

बोलो कोई इस पतिता को
क्यों स्वीकार करेगा;
जान - बूझ कर भग्न नाव
में, कैसे पाँव धरेगा?

हो जाये विश्वास आज
भी, यदि भावी जीवन का;
परिवर्तन मैं कर सकती
हूँ, अब भी अपने मन का।"

"सुंदर रूप सदा यौवन का
नहीं साथ रहता है;
देखो रख कर हाथ हृदय पर
अपने, क्या कहता है ?

शोभा है नारी के तन की
लज्जा का आभूषण;
संध्या वेला में जीवन की
कहाँ मिलेगा पोषण ?

मर्यादा को वस्त्र - हीन
कर, बोलो क्या पाओगी ?
कुल के माथे पर कलंक
का टीका बन जाओगी ।

रह कर नारी मर्यादा में
देवि तुल्य हो जाती;
सीमाओं में रह कर ही
वह, जग - वंद्या कहलाती ।

मर्यादा वह नहीं कभी
जो, भय के कारण आती;
मर्यादा मानव जीवन की
है, अमूल्य निधि, थाती ।

सिया राम में सदा राम
के पहले सीता आती;
नहीं तोड़ कर मर्यादा
वे, जग-जननी बन पातीं।

नारी की यश-गाथा का
वे, स्वर्णिम पृष्ठ कहातीं;
पुण्य नाम लेकर जिनका
यह, धरा धन्य हो जाती।

एकाकी हैं धरा गगन
रवि, शशि अधीर कब होते;
सीमाओं को तोड़ कभी
क्या मर्यादा को खोते?

रह कर मानव संघर्षों
में, नहीं धैर्य जो खोता;
अग्नि-परीक्षा में जीवन
की, सफल वही है होता।

सोना अग्नि-परीक्षा से
जब आता बाहर तप कर;
मूल्य और भी बढ़ जाता
है पाता रूप निखरकर।

करो याद उस जननी को
जो तुम्हें निहार रही है;
अपनी पलकों से जो अब
तक, डगर बुहार रही है;

करके हत्या दो प्राणों
की, क्या सुख से जी लोगी ?
अन्धे की लकड़ी बनकर
क्या उसे सहारा दोगी ?

भाई का अधिकार बहन
पर, सोच यही मैं आया;
पड़ा पंक में हीरा है,
क्या जाता नहीं उठाया ?"

बोली "पद-पंकज प्रताप
से नारी गई उबारी;
शापित मुझ - सी पड़ी हुई
थी, होकर वह बेचारी।

दिव्य पुरुष हे ! दिव्य दृष्टि
के दाता, तुमसे हारी;
रात अधिक बीती, करती
कल, घर की मैं तैयारी।"

नव प्रभात आया अपनी
स्वर्णिम किरणें फैलाये;
और साथ ही "मीना" "रवि"
भी, लौट गाँव को आये।

निकट सरोवर एक गाँव
के बालक जहाँ नहाते;
देख डूबता एक उन्हीं
में, शोर मचा चिल्लाते।

कूद पड़ा पल में "रवि"
था, बालक के प्राण बचाने;
लाया खींच उसे बाहर
था, और लगा सहलाने।

समाचार द्रुत गति से था
यह फैल गया हर घर में;
सुना जिन्होंने पड़े दौड़
सब, थे जो ग्राम डगर में।

कहा एक ने था उनमें
"अच्छा होता मर जाता;
बेटा उसी दस्यु का यह
जो है दिन-रात सताता।"

दशा देख कर बेटे की
माता ने गले लगाया;
भीगे वस्त्र देख "रवि" के
प्रति था आभार जताया।

"रूप मनुज का धर ईश्वर
ने मेरा पुत्र बचाया";
आया स्वामी जब बाहर
से, उसने उसे बताया।

मध्य रात्रि में गहन तिमिर
ने थी चादर फैलाई;
शयन-कक्ष के बाहर "रवि"
के आहट कोई आई।

अंधकार में खड़ा द्वार
पर, युवक एक अनजाना।
बोल पड़ा "रवि" उसे देख
कर, "नहीं तुम्हें पहचाना।"

"पिता उसी का मैं "रहीम"
हूँ, तुमने जिसे बचाया;
देने को उपहार साथ में
हूँ मैं लेकर आया!

पुत्र - रत्न कुल - दीपक है
वह प्राणों से भी प्यारा;
लाये उसको मृत्यु - द्वार
से, है उपकार तुम्हारा।"

"मान और धन की इच्छा
से, उसको नहीं बचाया;
था कर्त्तव्य सहज मेरा जो
केवल वही निभाया।

मेरे आत्म - तोष को तुम
यों, धन से तोल रहे हो?
मनः सरोवर के अन्दर
क्यों विष यों घोल रहे हो?

अतुल सम्पदा पाकर भी
क्या तुमने पाया सुख है?
धन चरित्र का नहीं पास
जब, होता केवल दुख है।

भेद सरोवर और सिन्धु का
यहाँ मिटाने आया;
आदर्शों से च्युत जीवन
है, भार सदा कहलाया।

शोषण से आता है धन
जो, असंतोष को बोता;
त्याग - हीन धन ही अनर्थ
का, कारण जग में होता।

पहरा रहे सदा संयम
का, मिटे नहीं मर्यादा;
उच्च और सात्विक विचार
हो, जीवन भी हो सादा।

है मानव जो सुख औरों
का, देख सुखी होता है;
दर्द देख कर औरों का जो
मन ही मन रोता है।

पूर्ण चंद्र की रजत - राशि
को, देख सिंधु मुसकाता;
तप्त - धरा की पीर देख
है, बादल नीर बहाता।

हिमकर दिन में, रजनी में
दिनकर जैसे है सोता;
छिपा हुआ मानव के मन में
वैसे ही गुण होता।

साथ कोयले के हीरा
भी, दबा भूमि में मिलता;
सुरभि लुटाता पंक अंक
में ही पंकज है खिलता।

मरा - मरा जपते - जपते
वह निकट राम के आया;
मुनिवर ने कवि - कुल - भूषण
बन, जग में नाम कमाया।"

"मैंने अगणित परिवारों
का, जीवन - दीप बुझाया;
रक्त - सने अपवित्र करों
से, लूटा धन घर लाया।

घृणित पाप की प्रबल ज्वाल
में, है मन मेरा जलता;
नहीं अभी तक सत्य मार्ग
पर, रहा कभी भी चलता।

ढका हुआ काई से हूँ
मैं, निश्चल एक सरोवर;
स्पर्श तुम्हारा पाकर के
अब गया तरंगों से भर।

लता सहारा पाने पर
जैसे ऊपर चढ़ पाती;
वायु उड़ा कर तृण को भी
गिरि-शिखरों पर ले जाती।

छूकर पारस को जैसे
लोहा कंचन हो जाता;
वैसा ही कुछ परिवर्तन
अपने अन्दर मैं पाता।

देव-तुल्य तुम मैं जीवन
के, पथ पर हुआ भ्रमित हूँ;
श्रेष्ठ कार्य करते हो तुम
मैं करता कार्य घृणित हूँ।

तुम-सा पुरुष प्राप्त करके
यह धरा धन्य हो जाती;
हुई प्रज्ज्वलित है विवेक
की मेरे मन में बाती।

मुझको मेरी ही आत्मा
अब क्यों धिक्कार रही है?
पाकर सब कुछ शांति नहीं
है, यही पुकार रही है।

चाह रहा पथ बदलूँ अब
मैं, घृणित निम्न जीवन का;
मिले मुक्ति चिन्ताओं से
तब और मिले सुख मन का

सम्मानित जीवन जीने
की नित योजना बनाता;
लेकिन बदले में विकल्प
हूँ, कोई ढूँढ़ न पाता।"

"पथ भूला यदि भोर प्रहर
है, लौट साँझ घर आता;
इस जग की है रीति यही
वह भूला नहीं कहाता।

पौरुष - हीन व्यक्ति धारा
के, साथ - साथ बहते हैं।
धारा के विपरीत चले
जो, पुरुष उसे कहते हैं।

बाधा सूरज के उगने
में, डाल सका क्या कोई?
फूटेंगे अंकुर अवश्य
जब, धरा जायगी बोई।

शक्ति - हीन जो तृण समान
वे तूफानों से डरते;
पर्वत - से दृढ़ निश्चय वाले
चिन्ता कभी न करते।

है संकल्प सुदृढ़ उर में
तब राह स्वयं बन जाती;
काट - काट चट्टानों को
सरिता भी राह बनाती।

दीन दुखी जन की करुणा
से, मन का दीप जलाओ;
और दिया दुख जिन्हें अभी
तक, उनको सुख पहुँचाओ।

देश - धर्म कौ रक्षा में
यदि जीवन शेष लगाओ;
सम्भव है दुष्कर्मों का
तुम, प्रायश्चित कर पाओ।"

"प्रहर शेष है एक निशा
में, सोच रहा घर जाऊँ;
मन का अद्भुत परिवर्तन
यह पत्नी को बतलाऊँ।"

तीर्थ - स्थल से पापों को
वह, जैसे धोकर आया;
हुई प्रसन्न बहुत पत्नी
भी, उसको जब बतलाया।

लेकर ज्यों अवतार धरा
पर, धर्म आज हो आया;
कथनी - करनी में किंचित
भी, भेद न उसके पाया।

नहीं लूटने को जाता
वह, देख सभी विस्मित थे;
पाकर परिवर्तन "रहीम"
में, सब आश्चर्य - चकित थे।

कंधे पर हल रख कर अब
वह था खेतों को जाता;
कठिन परिश्रम कर धरती
से, था सोना उपजाता।

नई प्रेरणा से उसने
था, विद्यालय बनवाया;
श्रम कर एक चिकित्सालय
भी, नया वहीं खुलवाया।

संचित धन जन-हित कार्यों
में उसने स्वयं लगाया;
किया प्राप्त सम्मान पुनः
विश्वास सभी का पाया।

उत्सर्ग

संकट के बादल स्वदेश
पर लगे आज मँडराने;
सीमा पर सैनिक सज्जित
जाते थे आन बचाने।

मातृ - भूमि के मस्तक पर
चढ़ शत्रु - वाहिनी आई;
सुप्त सिंह - सा जगा देश
फिर जाग उठी तरुणाई।

कौंध गई सहसा "रहीम"
के बिजली हृदय - गगन में;
नवल प्रेरणा सी - "रवि" की
बातें उतरातीं मन में।

देख शत्रु का दुःसाहस
था, शोणित लगा उबलने;
समाचार सुन कर "रहीम"
का, पौरुष लगा मचलने।

आया "रवि" के पास त्वरित
वह मन की व्यथा सुनाने;
"चाह रहा रण में जाऊँ
अरि - दल को मजा चखाने।

आया संकट मातृ - भूमि
पर, आज बहुत है भारी;
समर - भूमि को चलने की
मैं, करता हूँ तैयारी।

अम्बर लाल हुआ लोहित
से, भू अंगार उगलती;
अरि - दल से लोहा लेने
की उर में चाह मचलती।"

बोला "रवि" "यदि बचा देश
तो घर भी बचा रहेगा;
बैरी घुस आया भीतर
यदि, तो क्या विश्व कहेगा?"

भीगे नयनों से सबने
थी, दे दी उसे विदाई;
विजय - कामना की प्रतीक
थी, जय - माला पहनाई।

माथे पर उसके बहनों ने
रोली तिलक लगाई;
पाकर सबका स्नेह हृदय
में, उसके पुलक समाई।

घोर रुदन करती पत्नी थी
लिपट गई चरणों से;
धोती थी प्रिय के पग-तल
वह अपने अश्रु-कणों से।

सूनापन घर-आँगन का
था, नहीं प्रिया को भाता;
आकर सपनों में जैसे
वह, अपने पास बुलाता।

पाकर हल्की-सी आहट
भी, शय्या से उठ जाती;
इधर-उधर कुछ देख-ताक
कर, थी मन को समझाती।

लगी अचानक आग गाँव में
फैली जो द्रुत गति से;
ढेर राख का शेष रहा
जन, धन की भारी क्षति से।

भस्म हुआ सब कुछ "रहीम"
का, सहसा पल में जल कर;
आर्द्र - नयन थे खड़े सभी
पछताते कर मल - मल कर।

पत्नी और पुत्र मरने
का, समाचार था पाया;
पर सीमा को त्याग नहीं
वह, घर को वापस आया।

बोला "अब क्या शेष रहा
जिसके हित मैं घर जाऊँ?
शत्रु - सैन्य को पीठ दिखा
जग में कायर कहलाऊँ?

विजय नहीं मिल जाती जब
तक, नहीं लौट जाऊँगा;
ग्राम - वासियों के सम्मुख
मैं, मुख क्या दिखलाऊँगा?"

शत्रु - सैन्य पर अंधा - धुंध
गोलों की वर्षा करता;
मृत्यु - वरण से नहीं कभी
वह था किंचित भी डरता।

घुस कर वैरी की सीमा
में यान अनेक गिराये;
शत्रु - सैन्य पीछे हटता
जाता था जान बचाये।

दुर्गम बीहड़ राहों पर
सेना थी बढ़ती जाती;
अद्भुत शौर्य देख पुत्रों
का मातृ - भूमि मुसकाती।

सुनकर जय - निनाद अरि - दल
की, थी छाती फट जाती;
देव - पुरी मानों प्रसन्न
हो हिम-प्रसून बरसाती।

बलिदानी वीरों को ही
है, सदा विजय - श्री वरती;
भू पर रक्षा आदर्शों की
है, सदा शक्ति ही करती।

हास और उल्लास नया
था, आज चतुर्दिक छाया;
धर्म - पक्ष ही वसुन्धरा
पर सदा जयी हो पाया।



परिणति

सागर में स्मृतियों के था
वह डूब - डूब उतराता;
हर्ष उल्लसित किन्तु विकल
उर, धैर्य नहीं रख पाता।

निकट गाँव के आते ही
थी, मूर्ति सजीव उभरती;
प्रिया - पुत्र की आकृतियाँ
अपलक नयनों में तिरतीं।

गाँव पहुँचते ही "रहीम"
को, सबने शीश बिठाया;
पीड़ाओं का ज्वार उमड़
कर नयनों से झर आया।

"जीवित होती आज प्रिया
यदि, वह गद्गद् हो जाती;
विजयोत्सव के अवसर पर
वह, फूली नहीं समाती।

है असीम उल्लास हृदय
के, अन्दर नहीं समाता;
होता यदि कोई अपना
तो, पुलकित होकर गाता।"

कहा "रश्मि" ने, "देश समूचा
है परिवार तुम्हारा;
शीश हमारा गर्वोन्नत
है, आज तुम्हारे द्वारा।

रख कर धैर्य हृदय में है
मानव महान बन जाता;
पूनम अथवा अमा निशा
में, भेद न कोई पाता।

खिला डाल पर हो प्रसून
मरुथल में या शाद्वल में,
अन्तर कोई नहीं सुरभि
में, भेद न कोई मन में।"

"भाभी ! अद्भुत परिवर्तन
है पड़ता यहाँ दिखाई;
जैसे वैभव मूर्तिमान
हो, लेता हो अँगड़ाई।"

बोलो "हुआ स्वावलंबी
यह, सुन्दर गाँव हमारा;
कठिन परिश्रम कर सबने
है, हिलमिल इसे सँवारा।

खेतों की धरती न यहाँ
पर, कभी रहेगी प्यासी;
नहीं तकेगी धरा मेघ
को, मुख पर लिये उदासी।

भूखा नहीं यहाँ कोई
अब फसलें भी मुसकातीं;
भाग्य - विधाता हैं अपने
हम, गीत प्रकृति भी गाती।

सुंदर लघु उद्योग यहाँ
पर गये अनेक लगाये;
श्रम अमूल्य निधि है स्वदेश
की, व्यर्थ न जाने पाये।

जिसकी जैसी रुचि उसने
वैसे उद्योग लगाये;
होता है सम्पन्न देश
जब उत्पादन बढ़ जाये।

श्रम - प्रधान उद्योग देश
की, दृढ़ आधार - शिला है;
साधन - हीन मनुष्यों को
जिससे आधार मिला है।

है अधिकार पनपने का
सबने समान ही पाया;
वट - सा यदि बढ़ जाये तो
वह, तरु दे शीतल छाया।

साथ - साथ ही एक डाल
में, सुमन - शूल हैं रहते;
देख मधुप मकरन्द पान
क्या शूल कभी हैं डहते ?

निराश्रितों के हेतु ग्राम
में, खोला गया निकेतन;
शिल्प - निपुण होकर नारी
भी, कर ले सुख - मय जीवन।

है दायित्व निकेतन के
संचालन का "मीना" पर;
हार तुम्हारे स्वागत को
आती वह देखो ले-कर।"

घूँघट का पट खोल उषा
ने, ली पहली अँगड़ाई;
विदा "रश्मि" "रवि" के होने
की, घड़ी निकट थी आयी।

निज घर से बोझिल मन ले
आये सब ग्राम - निवासी;
लेकर सुमन - हार हाथों
में, मुख पर लिये उदासी।

एकत्रित हो गये सभी
थे, देने हेतु विदाई;
सुखद यशस्वी जीवन की
सबने कामना सुनाई।

साश्रु नेत्र सबने उनके
प्रति, था आभार जताया;
व्रत मानवता के पथ पर
चलने का था दुहराया।

बोला "रवि" "है गाँवों में
आत्मा भारत की पलती;
चकाचौंध नगरों की मन
को, अनायास है छलती।

कंचन प्रात हँसे घर-घर
में, है यह मेरा सपना;
आओ इसी हेतु वारें
हम तन, मन, जीवन अपना।

व्यक्ति-व्यक्ति के मन में मैं
परिवर्तन करने आया;
सुरभित सुमनों-सा उनको
सद्भावों से महकाया।

दीन-हीन जन के मन में
विश्वास जगाने आया;
मातृभूमि के पुत्र सभी
हैं, भेद न कोई पाया।

सर्व धर्म सम भाव हमारी
रही सदा परिपाटी;
दूरी जा सकती हृदयों
को, इसी भाँति है पाटी।

त्याग सदा अपनी संस्कृति
का, मूलाधार रहा है;
सुख औरों को देने के
हित, हमने कष्ट सहा है।

कार्य करें हम वह जिससे
नित रहे देश - हित होता;
आपस का संघर्ष सदा
ही, दुर्बलता को बोता।

शांति समृद्धि हेतु जनता
में, बीज क्रांति का बोया;
मैंने स्नेह - सूत्र - बन्धन
में, सबको यहाँ पिरोया।

शोषित यहाँ नहीं कोई
है, और न शोषक कोई;
इस माटी में लता - द्वेष
की, नहीं जायेगी बोई।

संचय करके धन मानव
जो नहीं त्याग है करता;
शत्रु बड़ा वह मानवता
का, लूट - लूट घर भरता।

थोड़े से हाथों में ही
धन, जब संचित हो जाता;
कोई असन्तोष बढ़ने
से, नहीं रोक है पाता।

चाह रहा नभ चढ़ कर मैं
उल्का - दीपों को लाऊँ;
मिला जिन्हें वर अन्धकार
का, घर उनके पहुँचाऊँ।

नील - गगन का वस्त्र चीर
कर, मैं परिधान बनाऊँ;
ढका नहीं अब तक जिनका
तन, उनको मैं पहनाऊँ।

पश्चिम के प्रभाव ने है
उच्छृंखल हमें बनाया;
मर्यादा के भग्न भवन
को, पुनः जोड़ने आया।

मरु में कुसुम खिलाने
में, क्या मिलती कभी सफलता ?
पाकर में अनुकूल भूमि
है, अंकुर फूट निकलता।

विश्व - चाक के मध्य धुरी
सी, है भारत की धरती;
रही, जगत के आँगन में
अविरत प्रकाश वह करती।

लेकर के संदेश यहाँ
मैं, मानवता का आया;
जीवन सबका सुख-मय कर
दूँ, रहे न दुख की छाया।

चले युगल अब एक ज्योति
से, दीप अनेक जलाने;
मंत्र जागरण का घर-घर
में, निकल पड़े पहुँचाने।



शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	मुद्रित	अभीष्ट
६	७	अनारीनत	अनगिनत
७	३०	सकती	सकता
१०	१४	से	में
११	१६	स्नेहासिक्त	स्नेहसिक्त
३२	१०	शोतलला	शीतलता
४३	३	के	में
४६	२	लुटाय	लुटाये
५१	१८	क	की
६८	६	सेवा × बढ़	सेवा से बढ़
७८	१२	म	हम
८३	१०	दुख	कुछ
१०५	१	बोलो	बोली
११०	१६	मे	के

"सुकवि ओम प्रकाश खण्डेवाल द्वारा विरचित मौलिक रचन "रवि-रश्मि" पढ़ने का अवसर मिला। नाम रश्मि ही पर्याप्त लगत है पर रवि-रश्मि दम्पति हैं जो भारतीय संस्कृति के पोषक, त्यागी क्रान्तिदर्शी नागरिक हैं।"

"आदि से अन्त तक पाठक कथानक की जिज्ञासा सहित रम वृत्ति से भाव विभोर हो जाते हैं।"

"बापू का हरिजन प्रेम, स्वामी दयानन्द सरस्वती की संस्कृति निष्ठा, पं० नेहरू की हिन्दू-मुस्लिम एकता, लोक नायक एवं बिन व के डाकू-हृदय परिवर्तन की झाँकी, संजय गाँधी का दहेज-उन्मूलन आ समग्र समाज सुधार की अपेक्षायें इस काव्य में कवि ने मुक्ता माला स पिरोयी-संजोयी हैं। भाषा तथा भाव प्रहमानता में होड़ लगी है।"

"काव्य सौष्ठवमयी कोमलता-कान्तता से जहाँ हृदय को आह्ला मिलता है वही लोक मंगल की भाव-सरिता मे बिहारी की 'अनबू बूड़े तरे जे बूड़े सब अंग —उक्ति चरितार्थ होती है।"

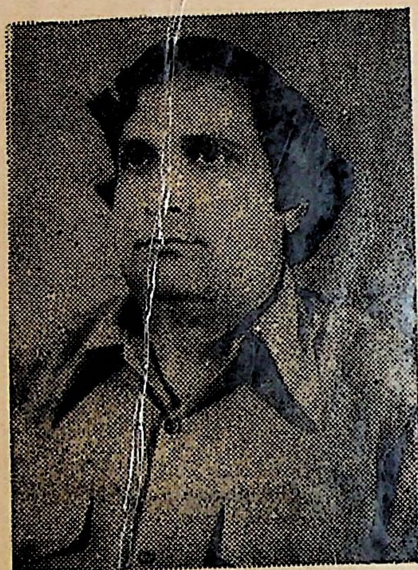
डा० राजेश्वर सहाय त्रिपाठी
प्रधान मंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

"रवि-रश्मि हिन्दी काव्य जगत के उदीयमान नक्षत्र सुकवि श्री ओमप्रकाश खण्डेलवाल की प्रथम सशक्त कृति है।"

"संपूर्ण कथानक का केन्द्र लोक जीवन है। कथावस्तु में पर्याप्त गतिशीलता और सौष्ठव है।"

"रवि-रश्मि की भाषा सहज, सरल, प्रवाहयुक्त और प्रभावपूर्ण है। इसमें संस्कृत के चुने हुये ललित कोमल शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से किया गया है। वाक्य-विन्यास सरल, सुगठित तथा व्याकरण सम्मत है। भाषा भावानुगामिनी है तथा कहीं कोई भी शब्द सायास नहीं लाया गया है। अधिकतर प्राणवान, सशक्त एवं अभिव्यंजक शब्दों का प्रयोग किया गया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, विरोधाभास, मानवीकरण, अपह्नुति, अनुप्रास जैसे अनेक अलंकार 'रवि-रश्मि' की शोभा बढ़ाते है।"

डा० छोटे लाल द्विवेदी, प्राचार्य,
डिग्री कालेज पट्टी, प्रतापगढ़



नाम—ओमप्रकाश खण्डेलवाल

शिक्षा—एम० ए० (अर्थशास्त्र)

आजीविका—व्यवसाय

जन्मतिथि—क्वार शुक्ल सप्तमी
संवत् १९९९

जन्मस्थान—अलवर (राजस्थान)

संपर्क सूत्र—३०६, शंकर दयाल मार्ग
चौक, प्रतापगढ़ (उ० प्र०)

अप्रकाशित कृतियाँ

(१) इन्द्रधनुष (गीत, नवगीत, गजलों व नयी कविताओं का संकलन)

(२) भीगी पलकें (प्रगीत)

(३) तथागत (खण्ड-काव्य)

(४) रक्तदीप (खण्ड-काव्य)